शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

# आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अप्रेल : १९६३ ☆ वर्ष अठारहवाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : १२

## आध्यात्मिक पद

सुमर सदा मन आतमराम,

स्वजन कुटुम्बी जन तूँ पोषैं तिनको होय सदैव गुलाम।

सो तो हैं स्वारथ के साथी अन्तकाल नहिं आवत काम॥१॥सु०

जिमि मरीचिका में मृग भटकैं, परत सो जब ग्रीष्म अति घाम।

तैसे तूं भव भवमांही भटकै, धरत न इक छिनहू विसराम॥२॥सु०

करत न गलानि अब भोगन में, धरत न वीतराग परिनाम।

फिर किमि नरकमांहि दुःख सहसी, जहाँ सुख लेश न आठों जाम॥३॥सु०

तातैं आकुलता अब तजि के थिर ह्वै बैठो अपने धाम।

भागचंद बसि ज्ञान नगर में, तजि रागादिक ठग सब ग्राम॥४॥सु०

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[ २१५ ]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ( सौराष्ट्र )

# नया प्रकाशन

## समयसार प्रवचन भाग ४

कर्ता-कर्म अधिकार पर पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा विस्तार से प्रवचन (गाथा ६९ से १४४) अंधकार हटाना नहीं पड़ता, प्रकाश होते ही अंधेरा उत्पन्न नहीं होता; इसप्रकार निर्मल तत्त्वज्ञान का अभ्यास करके भेदविज्ञान ज्योति अपनी आत्मा में प्रगट करने से अनादिकालीन महान भूल मिट जाती है। श्री समयसारजी शास्त्र में अत्यन्त अप्रतिबुद्ध अपूर्व तत्त्वज्ञान समझाया है।

कर्ता-कर्म के संबंध में जीव की भूल होने से मिथ्या अभिप्राय वश अज्ञानी जीव दु:खी हो रहा है, वह भूल कैसे मिटे, स्वानुभव कैसे हो, यह बात स्पष्ट करके समझाई है।

पृष्ठ संख्या ५६४, कपड़े की जिल्द, मूल्य (लागत से भी बहुत कम है) ४-०, पोस्टेज १-६० अलग।

### अनुभवप्रकाश

लेखक, अनुभवी विद्वान श्री दीपचंदजी कासलीवाल जो २०० वर्ष पूर्व हो गये। इस ग्रंथ में आत्मानुभव को सुगम-रीति से समझाया गया है। पृष्ठ १२६, मूल्य ०-३५ पोस्टेज अलग।

### शासन प्रभाव

जिसमें पूज्य कानजी स्वामी का जीवन चरित्र भी है। मूल्य ०.१२।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

# आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अप्रैल : १९६३ ☆ वर्ष अठारहवाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : १२

## व्यवहारमूढ़ जीवों का अभिप्राय

[ आत्महित के लिये मध्यस्थ होकर मूल सिद्धान्त भेद समझिये ]

[ श्री समयसार गाथा ४१३ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

**आत्मा के भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है; उसके बदले जिन का ऐसा अभिप्राय है कि—'मोक्षमार्ग में प्रथम व्यवहारनय परिणमित होता है फिर निश्चयनय'—वे व्यवहारमूढ़ हैं। उन्हें आचार्यदेव समझाते हैं कि अरे भाई! तुम्हारा व्यवहार तो अनादिरूढ़ है; आत्मा के निश्चयस्वभाव के भान बिना ऐसा शुभराग तो तुमने अनादिकाल से किया है; उसमें तुमने नया क्या किया? अभव्य जीव भी ऐसा व्यवहार तो करते हैं; तो तुम्हारे और उनके अभिप्राय में क्या अंतर हुआ? 'पहले व्यवहार और फिर निश्चय' ऐसा माननेवालों के अभिप्राय में और अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि के अभिप्राय में कोई अंतर नहीं है, दोनों व्यवहारमूढ़ हैं;—इस सम्बन्ध में दिगम्बर और श्वेताम्बर मतों के बीच महान दृष्टिभेद है; उसका मूलतः तत्त्व ज्ञान में बड़ा भेद इस प्रवचन में स्पष्टीकरण किया है। प्रत्येक जिज्ञासु जीव को यह विषय समझना आवश्यक है।**

आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसके ध्रुवस्वभाव में श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता—वही मोक्षमार्ग है; उसके बदले शुद्धात्मा के भान बिना मात्र व्यवहाररत्नत्रय के शुभराग को ही जो मोक्षमार्ग मानता है, उसे आचार्यदेव व्यवहारमूढ़ कहते हैं। वे जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा व्यवहार तो जीव ने अनादि से किया है और अभव्य जीव भी वैसा व्यवहार करता है; इसलिये जो व्यवहार का आश्रय करके उसे मोक्षमार्ग मानते हैं, वे जीव अनादिकालीन रूढ़ व्यवहार में ही मूढ़ हैं और **यथार्थ विवेकवाले निश्चय में वे अनारूढ़ हैं।**

दिगम्बर संत कहते हैं कि—निश्चयस्वभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग है; निश्चयपूर्वक ही व्यवहार होता है; निश्चय के बिना व्यवहार होता ही नहीं; जो निश्चय का आश्रय करे, वही सम्यक्त्वी है। यह यथार्थ वस्तुस्थिति है; परन्तु व्यवहारमूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव उसका विरोध करके कहते हैं कि—मोक्षमार्ग में प्रथम व्यवहार परिणमित होता है और फिर निश्चय है; इसलिये व्यवहारी वह सम्यक्त्वी है। परन्तु उनकी बात महान विपरीत है।

श्रावकों के व्यवहार या व्रतादि के शुभराग को ही जो मोक्ष का कारण मानते हैं और आत्मा के परमार्थस्वभाव को नहीं जानते, वे अनादिकालीन व्यवहार में ही मूढ़ हैं और प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर वे अनारूढ़ हैं; वे परमार्थशुद्ध ऐसे शुद्धात्मा को नहीं देखते।

पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, देव-गुरु-शास्त्र की विनय इत्यादि शुभराग को अंगीकार करके जो ऐसा मानते हैं कि—'यही मोक्ष का कारण है, यह व्यवहार करते-करते मुक्ति हो जाएगी'—तो वे जीव व्यवहारमूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। अरे भाई! चैतन्य के निश्चयस्वभाव के भान बिना ऐसा शुभराग तो तूने अनादिकाल से किया है—इसमें तूने नया क्या किया? और अभव्य जीव भी ऐसा व्यवहार तो करते हैं, तो फिर तुझमें और उनमें क्या अंतर हुआ? तूने पूर्व काल में अनंत बार ऐसा व्यवहार किया, परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं हुआ, तो फिर इस समय कहाँ से होगा? इसलिये समझ कि मोक्षमार्ग तो निश्चयस्वभाव के आश्रय से ही है। 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसा नहीं है। अकेला शुभरागरूप व्यवहार तो तू अनादिकाल से करता आया है, तो उसमें से तू किस राग को 'प्रथम' कहेगा? तेरा माना हुआ व्यवहार तो अनादिरूढ़ है, वह वास्तव में व्यवहार नहीं किन्तु व्यवहाराभास है। निश्चय प्रगट हुए बिना व्यवहार किसे कहा जाए? **आत्मा के भूतार्थस्वभाव का आश्रय करके निश्चय-श्रद्धा-ज्ञान प्रगट किये, तब शुभराग को उपचार से व्यवहार कहा और पूर्व के राग को भूतनैगमनय से व्यवहार कहा; परन्तु निश्चय के बिना व्यवहार कैसा? जिसे अभी प्रमाणज्ञान भी नहीं हुआ है, उसे नय कहाँ से होंगे? निश्चयनय से भूतार्थस्वभाव का ज्ञान करने से प्रमाणज्ञान हुआ, तब राग के ज्ञान को व्यवहारनय कहा। इसप्रकार निश्चयपूर्वक ही व्यवहार होता है। निश्चयस्वभाव के भान बिना मात्र शुभराग को हम व्यवहार नहीं कहते, वह तो अनादिकालीन व्यवहाराभास है। ऐसा व्यवहार तो अभव्य के भी होता है। 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसा माननेवाले के अभिप्राय में और अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि के व्यवहार में कोई अंतर नहीं है, दोनों व्यवहारमूढ़ हैं। पुनश्च, 'प्रथम**

**व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसी मान्यता और 'शुभराग से परितसंसार हो जाता है'—ऐसी मान्यता, इस दोंनों में व्यवहारमूढ़ता का अभिप्राय एक समान है।**

श्वेताम्बर शास्त्रों में मिथ्यादृष्टि जीव को दया, दानादि के शुभपरिणाम से परित संसार होना कहा है। मेघकुमार ने हाथी के भव में खरगोश की दया का पालन किया, इसलिये उसका संसार परित हो गया;—ऐसा कहते हैं और सुबाहुकुमार के जीव ने सुमुख गाथापति के भव में मुनि को आहारदान दिया, इसलिये उसका परितसंसार हो गया—इसप्रकार के दस दृष्टान्तों से वे शुभराग से परितसंसार होना मनाते हैं, परन्तु वह महान भूल है। अंतर में चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन बिना कभी भी भव का अंत नहीं हो सकता। राग तो संसार का कारण है, उससे भवान्त कैसे हो सकता है? और मिथ्यादृष्टि को तो अनंत संसार के कारणभूत अनंतानुबंधी का भाव बना है, उसे मिथ्यादृष्टिपने में परितसंसार हो ही नहीं सकता। चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से ही परितसंसार होता है, उसके बदले दया, दानादि के शुभराग से परितसंसार होना मानना, उनको आचार्यदेव व्यवहारमूढ़ता कहते हैं। (वह भी व्यवहारमूढ़ता है) दया-दानादि के शुभभाव तो औदयिकभाव हैं, वे स्वयं संसार हैं, तो उनसे संसार का नाश कैसे हो सकता है? नहीं ही हो सकता।

ज्ञायकमूर्ति चैतन्यस्वभाव, वह परमार्थ है, उसके आश्रय से प्रगट हुए निश्चयसम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र—वह मोक्षमार्ग है और निश्चय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, तब राग में उपचार करके उसे व्यवहार कहा जाता है; उसके बदले जो अकेले व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग मानता है, वह व्यवहारमूढ़ है; ऐसा व्यवहार तो अनादि से चला आ रहा है, इसलिये वह अनादिरूढ़ है। अज्ञानी लोग कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र के श्रद्धा-ज्ञान तथा पंच महाव्रतादि के शुभरागरूप व्यवहार—वह प्रथम और फिर उससे निश्चय की प्राप्ति होती है; तो उनसे आचार्य भगवान कहते हैं कि अरे भाई! तुम तो अनादिरूढ़ हो, तुम तो अनादिरूढ़ ऐसे व्यवहार में ही मूढ़ हो, तुम्हारे माने हुए व्यवहार को तो हम व्यवहार भी नहीं कहते, वह तो व्यवहाराभास है। आत्मा के भान बिना जीव तीव्र और मंदराग तो अनादिकाल से करता ही अया है; तथापि जो उसे मोक्षमार्ग का कारण मानते हैं, वे जीव व्यवहार में मूढ़ हैं।

देखो, जो ऐसा कहते हैं कि—प्रथम व्यवहारनय परिणमित होता है और फिर निश्चयनय, परन्तु यह बात वस्तुस्वरूप से बिल्कुल विपरीत है। अकेली व्यवहारप्रधान दृष्टि हुई, इसलिये सर्वज्ञ से चली आ रही सनातन जैन परम्परा से वह पृथक् हो गए। वे आत्मा के भानरहित

मिथ्यादृष्टि को भी दया-दानादि के शुभ परिणाम से परितसंसार होना मानते हैं; वह अकेली व्यवहारप्रधान दृष्टि है; यहाँ उसे 'अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़' कहकर आचार्यदेव यथार्थ वस्तुस्थिति समझाते हैं कि—अरे भाई! तू कौन से व्यवहार को प्रथम कहता है? क्या दया-दानादि के शुभभाव जीव ने अनादि से नहीं किए? मिथ्यादृष्टिरूप से शुभराग तो अनादि से करता ही आ रहा है; तब फिर उसे 'प्रथम' कैसे कहा जाए? और उससे परितसंसार भी कैसे हो? आत्मा के भूतार्थस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट किए बिना परितसंसार होता ही नहीं और राग को व्यवहार कहा ही नहीं जा सकता।

दिगम्बर और श्वेताम्बर की दृष्टि में यह मूलभूत अंतर है; दोनों सम्प्रदायों के बीच यह महान सिद्धान्तभेद है। इस बात को बराबर समझकर निर्णय करने योग्य है।

दिगम्बर संत कहते हैं कि—'निश्चयपूर्वक ही व्यवहार होता है, निश्चय के बिना अकेले राग को व्यवहार नहीं कहा जा सकता—यह तो यथार्थ वस्तुस्वरूप है।'

श्वेताम्बरों में कहते हैं कि—'व्यवहारनय प्रथम परिणमित होता है और फिर निश्चय'—वह विपरीत दृष्टि है। उसका स्पष्टीकरण करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि जो व्यवहार अनादिकाल से चला आ रहा है, उसे पहला कैसे कहा जा सकता है? व्यवहार को पहला मानना, वह अनादि के व्यवहार में ही मूढ़ता है।

और दिगम्बर संत कहते हैं कि—'भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवई जीवो'—अर्थात् भूतार्थ का आश्रय करनेवाला जीव ही निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

उसके बदले श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं कि—'व्यवहारी सो समकिती कहे भाष्य व्यवहार।'

—इसमें भी महान दृष्टिभेद है।

दिगम्बर संत कहते हैं कि—'निश्चयनयाश्रित मुनिवर प्राप्ति करे निर्वाण की।'

इससे विरुद्ध श्वेताम्बर में कहते हैं कि—'बहु दस दीसे जीवना जी व्यवहारे शिवयोग।'

दिगम्बर जैनधर्म के सत्य सिद्धान्त का विरोध करके आज से लगभग ३०० वर्ष पहले '८४ दिग्पट बोल' में श्वेताम्बर मत का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—

'निश्चयनय पहले कहें पीछे लें व्यवहार,
भाषाक्रम जानें नहीं जैनमार्ग को सार।

तातें सो मिथ्यामति जैनक्रिया परिहार,
व्यवहारी सो समकिती कहे भाष्यव्यवहार
जो नय पहले परिणमें सोइ कहैं हित होई
निश्चय क्यों धुरिपरिणमे ? सुखम मति कर जोइ।'

देखों यह कौन कहता है ?—श्वेताम्बरों की ओर से दिगम्बरों की टीका करते हुए यह बात कहीं है; उसमें वे 'प्रथम व्यवहार है और फिर निश्चय'—ऐसा कहते हैं और उसे सूक्ष्मगति मानते हैं। यहाँ दिगम्बर संतों के कथन में उसका उत्तर देते हैं कि—अरे भाई! कौन से व्यवहार को तुझे पहला कहना है ? यदि तुझे मंदकषाय को प्रथम कहना हो तो हम कहते हैं कि वह तो अनादि से रूढ़ है; जीव शुभराग तो अनादिकाल से करता आ रहा है; उसे जो मोक्षमार्ग मानता है, उसको हम व्यवहारमूढ़ कहते हैं। 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसा मानना, वह सूक्ष्म मति नहीं किन्तु स्थूल व्यवहारमूढ़ता है।

और 'प्रथम व्यवहारनय परिणमित होता है'—यह बात ही मिथ्या है, क्योंकि मिथ्याज्ञान में सच्चे नय होते ही नहीं। नय तो सम्यक् श्रुतज्ञान का प्रकार है। निश्चयनय से भूतार्थस्वभाव का आश्रय किया, तब सम्यक्श्रुत हुआ; वह ज्ञान जब राग को जाने, तब उसमें व्यवहारनय होता है। इसके अतिरिक्त मिथ्यादृष्टि को व्यवहारनय नहीं होता। अज्ञानी का व्यवहार, वह व्यवहाराभास है। स्वभावोन्मुख होकर निश्चय प्रगट करे तो व्यवहार को व्यवहार कहा जाता है। जैनधर्म का कोई भी बोल लें, उसमें स्वभावोन्मुख होना आता है। स्वभावोन्मुख हुए बिना जैन धर्म के एक भी बोल का यथार्थ निर्णय नहीं हो सकता।

भाषा तो जड़ है; भाषा में व्यवहार आने से कहीं मोक्षमार्ग में व्यवहार की प्रधानता नहीं हो जाती। 'समझाते हुए भाषा में व्यवहार आता है, इसलिये प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय है'—ऐसा जो मानते हैं, उनकी मान्यता मिथ्या है; उन्होंने भाषा की ओर देखा परन्तु वस्तुस्वरूप को नहीं देखा। वस्तुस्वरूप ऐसा है कि निश्चय के आश्रय से ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है—व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग है ही नहीं।

'जैसा सर्वज्ञ के केवलज्ञान में भासित हुआ हो, वैसा होता है'—**ऐसा यदि निर्णय करने जाए, तो वहाँ भी ज्ञानस्वरूप को पकड़े बिना केवलज्ञान का निर्णय नहीं होता;** इसलिये ज्ञानस्वभावोन्मुख होना ही आया।

क्रमबद्ध पर्याय होती है—ऐसा कहें तो वहाँ भी द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है, क्योंकि पर्याय, पर्याय में से नहीं आती किन्तु द्रव्य में से आती है, इसलिये द्रव्य पर दृष्टि गये बिना क्रमबद्धपर्याय का निर्णय भी नहीं होता।

**इसीप्रकार व्यवहार का निर्णय करने जाये तो वहाँ भी, निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता**—निश्चयपूर्वक ही व्यवाहर होता है; इसलिये निश्चय के ज्ञानपूर्वक ही व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होता है। यथार्थ निश्चय प्रगट हुआ, तब राग में आरोप करके उसे व्यवहार कहा जाता है। निश्चय प्रगट हुए बिना अकेले राग को व्यवहार कैसे कहा जाये? व्यवहार को व्यवहार कहलानेवाला निश्चय जागृत हुए बिना व्यवहार को 'पहला' कैसे कहें? क्योंकि ऐसा व्यवहार तो अनादि काल से कर ही रहा है, इसलिये वह तो अनादिरूढ़ है। क्या अनादि काल में राग की मंदता नहीं की?—अनन्त बार की है; तथापि जो उसे मोक्षमार्ग में पहला मानता है, वह अनादिकालीन व्यवहार में ही मूढ़ है।

आचार्यदेव उससे कहते हैं कि अरे भाई! तू विचार तो कर! मोक्षमार्ग ऐसा अपूर्व है कि **जिसे पूर्वकाल में कभी नहीं किया, और उसका प्रारम्भ भी अपूर्वभाव से होता है।** राग तो पूर्वभव में अनंत बार किया है, परन्तु उसके द्वारा मोक्षमार्ग का प्रारम्भ नहीं होता। आत्मा ने अनादि काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए देव-गुरु-शास्त्र की व्यवहारश्रद्धा की है, शास्त्रज्ञान किया है और पंच महाव्रत का पालन किया है;—इसप्रकार व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् शुभराग तो अनादि काल से किया है; उस व्यवहार में ही जो ममकार करता है अर्थात् जो ऐसा मानता है कि मोक्षमार्ग में व्यवहार पहले परिणमित होता है—वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़ है; उसकी अनादिकालीन संसारदशा में कोई अंतर नहीं पड़ा है। मोक्षमार्ग में निश्चय क्या और व्यवहार क्या—उसका भी उसे भान नहीं है। राग को व्यवहार करनेवाला कौन?—जो निश्चय का भान करके जागृत हुआ, वह शुभराग को व्यवहाररूप से जानता है। **निश्चयरहित अकेला व्यवहार तो अंध है।**

निश्चय स्वभाव के भान बिना भले ही अनेक प्रकार का शुभराग करे, व्रत-तप-दया-दान करे, शास्त्र पढ़े, परन्तु वह सब अनादिरूढ़ व्यवहार है। अज्ञानी लोक जिस राग को व्यवहार कहते हैं, उसे तो यहाँ 'अनादिरूढ़' कहकर अचार्यदेव ने महान सिद्धान्त रख दिया है। परमार्थस्वरूप आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान तो करता नहीं है और कषाय की मंदता में ही लगे रहकर जो ऐसा मानता है कि उससे मोक्षमार्ग प्रगट हो जाएगा,—वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में विमूढ़ मिथ्यादृष्टि

है—ऐसा मानकर वे व्यवहार के ही आश्रय में लगे रहते हैं। **व्यवहार का आश्रय छोड़कर भूतार्थ -स्वभाव का आश्रय किये बिना कभी भी समग्दर्शन या मोक्षमार्ग नहीं होता और मिथ्यात्व दूर नहीं होता।**

कोई कहे कि—पहले सत्य का श्रवण करे, तब फिर बाद में समझ में आता है; इसलिये देखो, पहले व्यवहार आया या नहीं ?—तो कहते हैं कि नहीं; क्योंकि चैतन्य वस्तु शरीर-मन-वाणी और राग से पार है—इसप्रकार चैतन्य की प्रतीतिपूर्वक जो सुने, उसी ने 'सुना' कहा जाता है। जिसे चैतन्य की रुचि नहीं है, उस जीव ने आत्मा की बात अनादि काल से सुनी ही नहीं है। आगे समयसार की चौथी गाथा में यह बात कही थी कि शुद्ध आत्मा की बात जीव ने कभी सुनी ही नहीं है। शब्द तो कानों में पड़े, तथापि कहते हैं कि—'सुनी ही नहीं है,' क्योंकि अंतर में उसप्रकार की रुचि प्रगट नहीं की, इसलिये निश्चय के बिना व्यवहार किसका कहा जाए ? **उपादान जागृत हुए बिना श्रवण को किसका निमित्त कहा जाए ?**

प्रवचनसार के चरणानुयोग में भी अंत में ऐसा कहा है कि शुद्धोपयोगवालों की ही मुक्ति है। चैतन्य का स्वभाव जानने का है; परन्तु इस ज्ञेय में ऐसा क्यों ?—ऐसा विकल्प करने का चैतन्य का स्वभाव नहीं है; **उसमें बीच में शुभ-अशुभ वृत्ति आए, वह मोक्ष का कारण नहीं है; शुद्धापयोग को ही मोक्ष का कारण कहा है।** वहाँ बीच में मुनि को कैसा शुभराग होता है, उसकी पहिचान कराई है; परन्तु उस शुभ को कोई मोक्ष का कारण मान ले तो कहते हैं कि शुभराग मोक्ष का कारण नहीं है, मोक्ष तो शुद्धोपयोग से ही होता है।

जो जीव ऐसा कहता है कि पहले व्यवहार और फिर निश्चय होता है—तो उससे कहते हैं कि कौन सा व्यवहार पहले होता है ? निश्चय प्रगट हुए बिना शुभराग को व्यवहाररूप से जानेगा कौन ? चैतन्य वस्तु की ओर सन्मुख होकर उसका ज्ञान कर तो व्यवहार का ज्ञान होगा। चैतन्यवस्तु को पकड़ने में किसी राग का—व्यवहार का आश्रय है ही नहीं; विकल्पातीत वस्तु को पकड़ने में अन्य कोई साधन है नहीं। **'ज्ञायक' को पकड़ में लिया, तब राग को जाननेवाला जागृत हुआ और उस समय राग को व्यवहार कहा।** वह वस्तु बाह्य क्षयोपशम की या शास्त्रों के पाण्डित्य की नहीं है, यह तो अंतर्दृष्टि की वस्तु है। जो मोक्षमार्ग में पहले व्यवहार को मानता है, वह जीव जैनमार्ग को नहीं जानता परन्तु अनादिकालीन व्यवहार में मूढ़ है।

'जो निश्चयपूर्वक ही व्यवहार मानते हैं, परन्तु प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय—ऐसा

नहीं जानते, वे भाषाक्रम को नही जानते,'—ऐसा मानना अज्ञान है। भाई! भाषा में व्यवहार आता है, उससे क्या हुआ? क्या धर्म भाषा के आश्रित है? 'भाई, तू सुन!'—ऐसा कहा वहाँ कथन में व्यवहार तो आया, परन्तु उसका मतलब यह नहीं है कि व्यवहारनय पहले परिणमित होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि 'व्यवहारी सी सम्यक्त्वी'—किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है; निश्चय के आश्रय से ही सम्यक्त्व है। मोक्षमार्ग में जो पहले व्यवहार को मानता है अथवा व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग होना मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है;—ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य आदि दिगम्बर संतों ने डंका पीटकर स्पष्ट घोषित किया है। भगवान! शांत हो! वाद-विवाद को छोड़कर वस्तुस्थिति को समझने का प्रयत्न कर! शुभराग परिणति तो अनादि से चली आ रही है; उसे व्यवहार कैसे कहा जा सकता है? इसलिये उस अनादिरूढ़ व्यवहार का आश्रय छोड़ और ज्ञायकतत्त्व की दृष्टि कर! मैं ज्ञायक हूँ—**इसप्रकार भूतार्थ स्वभाव को दृष्टि में लिया, तब निश्चय प्रगट हुआ, और तभी राग को उपचार से व्यवहार कहा गया;** इसलिये मोक्षमार्ग में निश्चय की ही प्रधानता है—व्यवहार की प्रधानता नहीं है। **अनुपचार मोक्षमार्ग प्रगट हुए बिना राग में उपचार किसका? निश्चय के बिना व्यवहार किसका? उपादान के बिना निमित्त किसका?**

ज्ञायकतत्त्व पर जिसकी दृष्टि नहीं है और अनेक प्रकार के जो शुभ विकल्प उठें, उनकी रुचि करके उन्हीं को मोक्ष का सच्चा साधन मानता है, वह जीव 'समयसार' को नहीं देखता। विकल्प तो असार हैं; परम सारभूत ऐसा शुद्ध आत्मा है, उसे वह जानता नहीं है। पंच महाव्रतादि शुभ विकल्पों को मोक्षमार्ग मानकर उनका ममकार करता है, वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़ वर्त रहा है और आत्मा के निश्चय स्वभाव में अनारूढ़ है। शुभ-अशुभराग अनादिकाल से करता आ रहा है, उसी में मोहित होकर मूढ़रूप से वर्तता है; परन्तु शुभाशुभ वृत्तियाँ तो क्षणिक हैं और **मैं तो ज्ञायकतत्त्व भूतार्थ हूँ—ऐसा प्रौढ़ विवेक, वह अज्ञानी नहीं करता, इसलिये उसे कभी धर्म नहीं होता। शुभ को व्यवहार तभी कहा जाता है, जब उसका निषेध करनेवाला निश्चय प्रगट हो जाए; इसके अतिरिक्त शुभ को व्यवहाररूप से भी नहीं गिनते। जो शुभराग से अपने को मुनि या श्रावक मानता है, वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़ है और प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर वह अनारूढ़ है। आचार्यदेव ने अकेले व्यवहार के लिये 'अनादिरूढ़' विशेषण लगाया और निश्चय के लिये 'प्रौढ़ विवेकवान'—ऐसा विशेषण लगाया।** इसप्रकार आमने-सामने विशेषणों का उपयोग है। शुभराग में मोक्षमार्ग मानकर जो उसमें वर्तता है, उससे कहते हैं कि तेरा व्यवहार तो

अनादिरूढ़ है; **राग और विकल्प से पार भूतार्थ चैतन्यस्वभाव को दृष्टि में लेना वह प्रौढ़ विवेक है।**—ऐसे प्रौढ़ विवेक द्वारा भूतार्थस्वभाव का आवलम्बन नहीं करता और अनादिकालीन राग का अवलम्बन नहीं छोड़ता; तथा जो ऐसा मानता है कि शुभराग करते-करते निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हो जाएगा—वह जीव अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़ है और प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर वह अनारूढ़ है; जिस भाव से अनादिकाल से संसार में भटक रहा है, उसी में वह मूढ़ है।

**व्यवहार करते-करते निश्चय प्रगट नहीं होता; किन्तु प्रथम से ही पराश्रय की श्रद्धा छोड़कर, व्यवहार का अवलम्बन छोड़कर भूतार्थस्वभाव का अवलम्बन करने से ही निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट होता है।** जिसप्रकार काले कोयले को यदि सफेद बनाना हो तो उसे जला देना पड़ता है; परन्तु उसे धोने से वह सफेद नहीं होता। उसीप्रकार संसार काले कोयले जैसा है; शुभराग भी संसार है; उस राग के अवलम्बन से संसार नहीं मिटता, परन्तु रागरहित चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से संसार मिट जाता है। संसारमार्ग और मोक्षमार्ग—इन दोनों भावों की जाति पृथक् है। अनादिकाल से जिस भाव से संसार में भटक रहा है, उस भाव से मोक्षमार्ग का प्रारम्भ कैसे हो सकता है? अज्ञानी कहते हैं कि 'शुभराग व्यवहार तो है न!' परन्तु भाई! शुभराग को व्यवहार कब कहा जाता है?—**जब उसकी रुचि छोड़कर निश्चय प्रगट करे तब।** चैतन्य ज्ञायकतत्त्व की अस्ति को स्वीकार करके विकार की—व्यवहार की रुचि छोड़ तो तेरे शुभराग को व्यवहार कहा जाये। जो ऐसा मानता है कि 'प्रथम व्यवहार और फिर निश्चय;' उसके तो राग की—व्यवहार की रुचि है; उसके शुभराग को तो वास्तव में व्यवहार भी नहीं कहा जा सकता।

देखो, यह दिगम्बर संतों की वाणी! दिगम्बन संतों ने यथार्थ मोक्षमार्ग को बना रखा है। निश्चयनय ऐसा प्रौढ़ विवेकवान है कि उसके अवलम्बन से आत्मा और राग का भेदज्ञान होता है—व्यवहार के अवलम्बन से भेदज्ञान नहीं होता। **जब स्वयं ज्ञायक आत्मा की दृष्टि करे, तब शुभराग को व्यवहार कहा जाता है। निश्चय की दृष्टि के बिना सब व्यर्थ है। व्यवहार भले हो, निमित्त भले हो, परन्तु उनके आश्रय से आत्मा का धर्म प्रगट हो, बना रहे, अथवा धर्म में वृद्धि हो—ऐसा नहीं है। निश्चय ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से ही धर्म प्रगट होता है, बना रहता है और उसमें वृद्धि होती है।**

उपदेश—वचनों में पापभाव से छुड़ाने के लिये कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि शुभराग करेगा तो धर्म के निमित्त बने रहेंगे। परन्तु **वास्तव में उपादान में धर्म प्रगट हुए बिना निमित्त**

**किसका ?** अशुभ को छुड़ाने के लिये ही वह बात कहीं है; वहाँ कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि शुभ करते-करते धर्म होगा—शुभ को मोक्षमार्ग नहीं कहना है। जीवों को विषय-कषायों के तीव्र पापभाव से छुड़ाने के लिए शास्त्रों में शुभभाव करने का भी उपदेश दिया है; **परन्तु वहाँ ऐसा सिद्धान्त स्थापित नहीं करना है कि शुभभाव करते-करते धर्म हो जायेगा।** शुभराग को पकड़कर जो उसकी रुचि और उत्साह करते है, वे जीव प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर आरूढ़ नहीं हुए हैं, अर्थात् मोक्षमार्ग में नहीं आये हैं, परन्तु अनादिकालीन व्यवहार में ही मूढ़ होकर पड़े हैं। व्यवहार में ही मूढ़ होकर विपरीत मार्ग पर चढ़े सो चढ़े, परन्तु अनादि से वह शुभराग करने पर भी अभी पार नहीं आया। **मोक्षमार्ग में बीच में शुभराग आता अवश्य है, परन्तु उस राग के अवलम्बन से मोक्षमार्ग नहीं होता—मोक्षमार्ग तो आत्मा के भूतार्थस्वभाव के अवलम्बन से ही है।** जो ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग को नहीं जानते और शुभराग को मोक्षमार्ग मानकर उसी में मूढ़रूप से पड़े हैं, वे जीव आत्मा के परमार्थ स्वभाव में अनारूढ़ वर्तते हुए शुद्ध आतम को नहीं देखते।

भगवान अर्थात् महिमावंत ऐसा भूतार्थरूप शुद्ध आत्मा है; उसकी जो महिमा नहीं करते और अनादि के राग को व्यवहार मानकर उसकी महिमा करते हैं, वे व्यवहार में मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं; उन्हें मुनित्व तो कहाँ से होगा ?

'बहु दल दीसे जीवनां जी व्यवहारे शिवयोग;—अर्थात् व्यवहार के अवलम्बन से अनेक जीव मुक्ति को प्राप्त हुए हैं'—ऐसा व्यवहाराभासी कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि—जो निश्चय पर आरूढ़ हैं, वे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं; जो जीव निश्चय पर आरूढ़ नहीं हैं और अनादिरूढ़ व्यवहार में ही मूढ़ है, उनकी तीन काल में मुक्ति नहीं होती। **भूतार्थस्वभाव के भान बिना तो सब इकाईरहित शून्यों के समान है। जो भगवान चैतन्यस्वरूप शुद्ध आत्मा को जानकर प्रौढ़ विवेकवान निश्चय पर आरूढ़ वर्तते हैं, उन्हीं को अल्पकाल में मुक्ति की प्राप्ति होती है; दूसरों को कभी मुक्ति नहीं होती।**

# गुरु

गुरु नाम महान का है। जिसमें जिसप्रकार की महंतता हो उसे उसीप्रकार की गुरु संज्ञा संभवित है। जिनमें धर्म की अपेक्षा से महंतता हो उन्हीं को गुरु जानना। गुरु में मुख्य बात क्या होती है, वह बताने के लिये आत्मावलोकन ग्रंथ में कहा है कि—

वियरायं वियरायं, सो जियस्सणिव ससरुओ वियरायं।
मुहुमुहु गणदि वियरायं, सो गुरुपयं भासदि सया॥२॥

**अर्थ**—जीव का निजस्वरूप वीतराग है, ऐसा जो बारम्बार कहे, उसी को गुरुपद शोभा देता है।

**भावार्थ**—२८ मूलगुण [निश्चय सम्यग्दर्शनादि सहित पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इंद्रिय निरोध, छह आवश्यक, केशलोंच, अस्नान, नग्नता, अदंतधोवन, भूमिशयन, खड़े-खड़े भोजन और दिन में एकबार आहार ग्रहण] २२ परीषह जय, पंचाचार आदि सहित विराजमान है तथा परमाणुमात्र बाह्य परिग्रह और अंतरंग में भी परमाणुमात्र परिग्रह की इच्छा नहीं है। उदासीन भाव से ही विराजमान हैं और निजस्वभाव जाति स्वरूप का साधन करते हैं, (स्वरूप में) सावधान होकर समाधि में लवलीन होते हैं तथा संसार से उदासीन परिणाम किये हैं—ऐसे जैन साधु होते हैं। वे स्वयं को तो वीतरागरूप से अनुभवन करते हैं, मन को स्थिरीभूत करके रहते हैं, और यदि कभी किसी को उपदेश भी देते हैं तो अन्य सब छोड़कर जीव का निजस्वरूप जो वीतराग है, उसी का बारम्बार कथन करते हैं। अन्य कोई अभ्यास उन्हें नहीं है, मात्र यही अभ्यास है। स्वयं का भी अंतरंग में वीतरागरूप से अनुभवन करते हैं, अभ्यास करते हैं।

बाह्य में भी जब बोलते हैं, तब 'आत्मा का स्वरूप वीतराग है' यही बात कहते हैं। ऐसा वीतराग का उपदेश सुनकर आसन्न भव्य (अल्पकाल में मोक्षपद प्राप्त करने की योग्यतावाले जीव) को नि:संदेह वीतरागी निज स्वरूप का भान-स्पष्ट भावभासन होता है। ऐसा वीतरागी कथन है। ऐसे जैन साधु को आसन्न भव्य गुरु कहते हैं, क्योंकि अन्य कोई पुरुष ऐसे तत्त्व का उपदेश नहीं देता। इसलिये ऐसे ही पुरुष को गुरु की पदवी शोभा देती है, दूसरों को नहीं। ऐसा नि:शंक जानना [इस कथन से विशेष यह समझना चाहिये कि जो वीतरागता, यथार्थता, स्वतंत्रता का उपदेश देते हैं, उन जैन गुरु को गुरुपद शोभा देता है; किंतु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी कार्य कर सकता है,

निमित्त प्राप्त किया जा सकता है, दूसरे का अच्छा-बुरा हम कर सकते हैं, पर से लाभ-नुकसान होता है और शुभराग से आत्मा का भला हो सकता है, ऐसा जो बतलाये अथवा माने, उसे जैनधर्म में गुरुपद शोभा नहीं देता।]

★

चक्रवर्ती की समस्त संपत्ति से भी मात्र जिसका एक समय भी विशेष मूल्यवान है—ऐसा यह मनुष्य-शरीर और परमार्थ के लिये अनुकूल ऐसा योग संप्राप्त होने पर भी यदि जन्म-मरण से रहित ऐसे परमपद का ध्यान नहीं रखा तो इस मनुष्यत्व को अधिष्ठित ऐसे आत्मा को अनंतबार धिक्कार हो!

जिसने प्रमाद को जीता, उसने परमपद को जीत लिया। *( —श्रीमद् राजचंद्र )*

★

## ग्राहकों से निवेदन

आत्मधर्म का यह ११वाँ अंक पाठकों के पास पहुँच गया, अब १२ वाँ अंक छपने पर भेजा जावेगा। इसके साथ ही वार्षिक मूल्य भी समाप्त हो जावेगा। मँहगाई के कारण ४.००) में लगात पड़ने पर भी घाटा उठाकर ३) रुपया सालाना ही चंदा रखा गया है, अत: ग्राहक गण आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य ३) रुपया मनिआर्डर द्वारा शीघ्र ही भेज देवें। मनिआर्डर से भेजने पर आपको वी.पी. खर्च ८१ नये पैसे की बचत होगी। अत: शीघ्र ही ३) रुपया मनिआर्डर से भेज दें, साथ में अपना ग्राहक नंबर, पूरा पता, पोस्ट व जिला आदि स्पष्ट लिखें। किसी भी प्रकार की शिकायत के लिये सम्पादक आत्मधर्म श्री जगजीवन बाउचंद दोशी, पो० सावरकुंडला (सौराष्ट्र) को लिखें। मनिआर्डर निम्न पते पर भेजें—

**आत्मधर्म कार्यालय**
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
पोस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

# अहिंसक वीरता

(ब्र० हरिलाल जैन)

महावीर भगवान की वीरता अलौकिक थी.... अहिंसक होने पर भी उनमें ऐसा वीरत्व था जो एक योगी के जीवन में होता है। बड़े-बड़े सम्राटों का मस्तक भी उस वीरत्व के समक्ष झुक जाता था। जिनके सामने बड़े-बड़े योद्धा भी हार जाते हैं, ऐसे अंतरंग शत्रुओं को जीतने के लिये अहिंसक वीरता की यह बात है।

आत्मसाधना करते करते योगी का बल जब ऋद्धि के शिखर पर पहुँच जाता है, तब उनकी शांति सुमेरु जैसी निश्चल हो जाती है; फिर जगत की बड़ी से बड़ी बाधा भी उस शांति में विघ्न करने के लिये समर्थ नहीं होती। शरीर की उन्हें उपेक्षा है, अब तो ध्रुव शांति ही उनका शरीर है, निर्विकल्पता ही उनकी संपत्ति है और वीतरागता-निरपेक्षता-मध्यस्थता उनका कुटुम्ब है। चोर-डाकू या विदेशी राजा कोई उनकी शांति या संपत्ति को लूटने में समर्थ नहीं। मनुष्यकृत, देवकृत, पशुकृत या प्रकृतिकृत बड़े से बड़ा उपसर्ग भी उनकी शांति को भंग करने में असमर्थ है। उस अहिंसक वीर को किसी विद्वेषी के प्रति न द्वेष है, न घृणा है, न क्रोध है और न उनका सामना करने की भावना। उस योगी के लिए तो वह करुणा पात्र है।

आत्मशांति को बाधा पहुँचानेवाले तो अंतर के संस्कार हैं, उनको तो उन वीर ने अपने काबू में ले लिया है..... पद-पद पर सावधान रहकर वे मोक्षपंथ पर चल रहे हैं। कदाचित् राग-द्वेष के संस्कार किंचित् जागृत हों तो उस समय बारह वैराग्य भावनाएँ लेकर सर्व शक्ति से उन पर टूट पड़ते हैं, तथा शांति में विघ्न करनेवाले उन संस्कारों को जड़ मूल से नष्ट कर डालते हैं। वे सब कुछ सहन कर सकते हैं किंतु शांति में विघ्न नहीं आने देते... कोई भी आत्मा की मधुर शांति का विरह भोगे उसे वे सहन नहीं कर सकते।

—इससे उन वीर का वीरत्व, उनका पराक्रम उन काम-क्रोध के संस्कारों पर चलता है कि जिन संस्कारों के आधीन समस्त जगत हुआ है। आत्मज्ञ वीर के अतिरिक्त संस्कार में ऐसा कौन योद्धा है कि जो काम क्रोध को जीत सका हो ? अपने को महाबलवान और वीर योद्धा माननेवाला भी किसी का किंचित् कटु शब्द कानों में पड़ते ही अंतर में उठते हुए क्रोध को क्या दबा सकता है ?—किसी सुंदर स्त्री द्वारा फेंके हुए एक तीक्ष्ण कटाक्ष बाण को क्या वह सहन कर सकता

है ?—नहीं, तुरंत ही वह व्याकुल हो जाता है.... क्रोध के आधीन होकर वह अपने आपको भूल जाता है और कामासक्त होकर वह धूप में तड़पती हुई मछली की भाँति तड़पने लगता है। बस, जान लिया कि वह कितना बड़ा वीर है ?—कितना बड़ा योद्धा है ?? उसका सब पराक्रम, उसकी सब वीरता—जिसका उसे घमंड था, वह काम-क्रोध के वश होते ही हवा में उड़ जायेगा और वे कायर उसकी हँसी उड़ायेंगे कि! वाह रे बहादुर! देखी तेरी वीरता!! जा, चूड़ियाँ पहिनकर बैठ जा घर में! यह तो तेरे ऊपर बिलकुल मामूली आक्रमण था, इतने से ही विचलित हो गया ? पुरुषार्थ हीन! कहाँ गई तेरी वीरता ?? वीरता देखनी हो तो देखो यह! सामने अचल ध्यान मुद्रा में खड़े हैं भगवान महावीर!!—जो अनेक उपसर्ग-परीषह आने पर भी अपनी आत्मसाधना से नहीं डिगे। उपरोक्त काम-क्रोध की साधारण बातों से तो क्या, किंतु जगत की समस्त विकारी शक्तियाँ एकत्रित होकर आ जायें तो भी उनके आत्मतेज को—उनकी आत्मशांति को डिगाने में समर्थ नहीं हैं। उन वीतरागी वीर के अंतर में क्रोध या काम की व्यग्रता-(आकुलता) उत्पन्न करने में कोई समर्थ नहीं—अहा! उनके वीरत्व की महिमा कब तक गायें! यही है सच्ची वीरता! यही है महावीर की अहिंसा।

# वैराग्य समाचार

धार्मिक संस्कार, तत्त्वरुचि, अमीरात और सौम्यता की मूर्ति, आदर्श श्रेष्ठिवर्य श्री नानालालभाई कालीदास जसाणी (उम्र वर्ष ८८) इनका देहांत बम्बई में तारीख ७-३-६३ के दिन हुआ।

वे पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त थे। उनके आत्मकल्याणकारी प्रवचन अत्यंत उल्लसित भाव से वे श्रवण करते थे, श्रवण करने से उनका अंतरंग द्रवीभूत हो जाता था। वे अध्यात्म शास्त्रों का अभ्यास निरंतर करते थे। तत्त्वजिज्ञासा इतनी तीव्र थी कि वृद्धावस्था तथा तबियत ठीक न होने पर भी हरेक धार्मिक कार्यक्रम में उनकी नियमित उपस्थिति रहती थी। उनकी धार्मिक उपासना अंतिम समय तक चालू थी।

पूज्य गुरुदेवश्री के परिचय में वे तीस वर्षों से थे, और उस समय वे अत्यंत उल्लसित भाव से और उग्र पुरुषार्थ पूर्वक स्वात्मकल्याणार्थ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहते थे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन अत्यन्त रुचिपूर्वक श्रवण करते थे तथा समझकर प्रमोद व्यक्त करते थे। जिस सत्य-धर्म के प्रति स्वयं को अगाध प्रेम था, उस मार्ग में उन्होंने अपने कुटुम्बीजनों को भी लगाया था।

उनकी उदारता भी बहुत प्रशंसनीय थी। प्रत्येक धार्मिक संस्था में उनका दान प्रथम नंबर का था। और इस उदारता की धूप सुगंध चारों ओर फैली थी। सर्व प्रथम सोनगढ़ में श्री दिगम्बर जैन मंदिर का निर्माण उन्हीं के द्वारा हुआ। राजकोट के भव्य जिनमंदिर में, सोनगढ़ का मानस्तंभ, नया जिनमंदिर, प्रवचन मंडप वगैरे में तथा पुरुषों के ब्रह्मचर्याश्रम के लिए उन्होंने उदारभाव से चंदा दिया था। पूज्य गुरुदेव श्री का राजकोट में अनेक बार पधारना हुआ। उसीप्रकार जैनधर्म की महान प्रभावना हुई, उसमें उनकी भक्तिभाव की प्रधानता थी। आप सोनगढ़ दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर के ट्रस्टी-२२ साल से थे, पूज्य गुरुदेव के चरणों में रहकर आत्महित साधते थे और उसके लिये सतत प्रयत्न करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री की आत्महितकारी वाणी श्रवण करके, जीवन में उस रूप परिणमन करने का प्रयत्न करके, देह का ममत्व कम करने का उन्होंने प्रयत्न किया था।

देहांत के दो दिन पहले उन्होंने कहा था कि 'इस शरीर की मुझे किंचित् मात्र भी चिंता नहीं है, किंतु पूज्य गुरुदेव के विरह का दु:ख है।' रोगावस्था में भी वे 'शुद्ध बुद्ध चैतन्य घन' आत्मस्वरूप का बारम्बार रटन करते थे। अध्यात्मतत्त्व भी इसप्रकार पचाया था कि उसके परिणामस्वरूप उनको आंतरिक शांति वर्तती थी और जीवन के अंतिम समय में भी वह वर्तती थी।

उनकी अमीरात भी ऐसी थी कि जिससे सबको उनके प्रति बहुमान उत्पन्न होता था और उनकी उपस्थिति भी शोभास्पद हो जाती थी।

उनमें रही हुई धार्मिक संस्कार की जागृति चालू रहे और उनकी आत्मा उसके बल से भविष्य में प्रगति करके शीघ्र देह रहित अविनाशी पूर्णानन्द दशा की प्राप्ति करे, ऐसी भावनासहित उनके कुटुम्बीजनों के दु:ख में हम सहानुभूति प्रगट करते हैं।

उनके वियोग से सोनगढ़ तथा राजकोट के दिगम्बर जैन संघ को तथा भारत के दिगम्बर जैन समाज को पूर्ति न हो सके ऐसी महान कमी पड़ गई है।

महात्मा गाँधीजी आदि राष्ट्रनेता राजकोट में उनके घर उतरते थे। वे राजकोट की राष्ट्रीयशाला के ट्रस्टी तथा सौराष्ट्र हरिजन सेवक संघ के प्रमुख थे। इस रीति से अनेक प्रकार उनका स्थान गौरवपूर्ण था। व्यवस्थितपना, विचक्षणता, नीतिवानपना, कुशलता आदि गुणों के कारण व्यापारी विभाग में भी उनका नाम और कार्य प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था।

# स्व० श्री नानालालभाई को स्मरणांजलि

तारीख ८-३-६३ के दिन राजकोट दिगम्बर जैन मंदिर के कम्पाउंड में शोक सभा भरी थी। उसमें श्री नानालालभाई की उदारता, सज्जनता, धर्मरुचि, अमीरात, गंभीरता, प्रौढ़पना, संस्कारिता, सौम्यता आदि गुण जो उन्होंने अपने जीवन में उतारे थे, उनकी प्रशंसा करके उनको श्रद्धांजलि अर्पण करने में आयी थी और उसके बाद एक शोक प्रस्ताव मंजूर करने में आया था।

तारीख १०-३-६३ के दिन श्री रामजीभाई दोशी की अध्यक्षता में राजकोट के नागरिकों की एक सभा भराई गयी थी। इस सभा में पूज्य गुरुदेवश्री उपरांत पूज्य बहेन श्रीबेन, श्री भक्ति बा, दिगम्बर जैन मंदिर का सर्व संघ, प्रमुख नागरिक, श्री नारायणदासभाई गाँधी आदि की उपस्थिति थी।

श्री पुरुषोत्तमभाई गाँधी तथा श्री वजुभाई शाह ने स्वर्गस्थ के महान गुणों को याद करके स्मरणाजंलि अर्पण की थी।

पूज्य गुरुदेव ने श्री नानालालभाई को योग्य आत्मार्थी, मुमुक्षु, निरभिमानी, विचक्षण, विवेकी, शांत, प्रौढ़ और आत्महित की लगनवाले, बहुत सहनशील, अमीर मनुष्य कहकर याद किया था, तथा उनके आदर्श जीवन का स्मरण कराया था।

श्री खेमचंदभाई ने अनेक धार्मिक संस्था के स्तम्भरूप श्री नानालालभाई के देहांत से शोक न मनाते उसको वैराग्यस्वरूप में परिवर्तित करके, उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री का उपदेश पचाकर जो प्रशंसनीय उत्तम जीवन आदर्शरूप बनाया, इसके वर्णन के उपरांत उनका नाम नानालाल होते हुए भी उन्होंने जो महान कार्य करके बताये, उनकी प्रशंसा की थी। जो गुण उनमें थे वे अपने जीवन में उतारना यही उनका सच्चा स्मरण है, ऐसा कहकर उन्होंने श्रद्धांजलि अर्पण की थी।

उसके बाद प्रमुख श्री रामजीभाई ने स्वर्गस्थ के परिचय के उपरांत उनके जीवन पर विशेष प्रकाश डाला था। उनका निर्भयपना, अनिंद्य, सदेखापना वगैरे गुणों का वर्णन किया था तथा उनमें रही हुई गृहस्थोचित महानता की प्रशंसा की थी। पश्चात् एक शोकप्रस्ताव करने में आया था।

*—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन*

# निश्चय-व्यवहार की मर्यादा

## शुद्धात्मा के आश्रय से ही मोक्षमार्ग

(मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय ७, पृष्ठ ३७०-७१ पर पूज्य कानजी स्वामी का प्रवचन। वीर संवत् २४८८, चैत्र सुदी-१३ महावीर जयंती)

**मोक्षमार्ग तो वीरागभाव है। वह शुद्ध निश्चयनय के विषयभूत त्रिकाली पूर्ण ज्ञानघन ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से प्रकट होता है। संयोग, शुभराग, व्यवहार—भेद के आश्रय से किसी को मोक्षमार्ग प्रगट नहीं होता। इस नियम को जो नहीं मानते, उनकी निमित्ताधीन दृष्टि होने से संयोग व विकार (शुभराग) भी आत्महित के लिये कार्यकारी हैं, दोनों नय समकक्षी हैं; उपादेय हैं—ऐसा वे मानते हैं; इसलिये वे कभी भी वीतराग की आज्ञा नहीं मानते, मोक्षमार्ग क्या है? नवतत्त्वों के भिन्न लक्षण क्या हैं? किसप्रकार हैं? यह तो वे जानते ही नहीं।**

जीव निश्चयनय व व्यवहारनय—इन दो नयों के अर्थ में क्यों भूल करते हैं? जैन मतानुयायी होने पर भी, शास्त्र का अर्थ न समझकर किसप्रकार भूल रहे हैं, उसका वर्णन चलता है।

निमित्तनैमित्तिक का यथायोग्य संबंध गुणस्थान के अनुसार होता है। वहाँ ज्ञानी जीव स्वद्रव्य के आलम्बन की जितनी वृद्धि करते हैं, तदनुसार राग व राग के निमित्त दूर हो जाते हैं। वहाँ निमित्त का आलम्बन छोड़ने की अपेक्षा से, भूमिकानुसार इसने इसका त्याग किया, ऐसा व्यवहार से कथन आता है। गुणस्थान के अनुसार उपादान कार्यरूप में परिणमित होता है। वहाँ किसप्रकार का निमित्त तथा कैसा राग होता है, उसका ज्ञान कराने के लिये निमित्त का कथन किया जाता है। शास्त्र में जहाँ शुभराग-व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप बताने के लिये उसे निमित्त मानकर उपचार से—व्यवहार से मोक्षमार्ग के रूप में उसका निरूपण किया जाता है, वहाँ उसी को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना चाहिये; क्योंकि वह तो बंध के कारणरूप आस्रवभाव है।

आत्मा तो नित्य अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, फिर भी उसको मूर्तिक कहना, पर का कर्ता, हर्ता अथवा स्वामी कहना, वह स्थूल व्यवहारनय का कथन है। कोई जीव पर का कर्ता, प्रेरक या स्वामी नहीं हो सकता, किंतु ऐसा विकल्प-रागभाव करता है। उस विकल्प का भी ज्ञानी स्वामी नहीं बनता; वह किसी भी प्रकार के राग को करने योग्य नहीं मानता। पर से, जड़कर्म से राग-द्वेष, सुख-दुःख होना नहीं मानता। निमित्त-नैमित्तिक संबंध बताने के लिये शास्त्र में व्यवहार के अनेक

कथन आते हैं। जैसे कि—देखकर चलना, उठना-बैठना, वस्तु इसप्रकार उठाना-रखना, रात्रि के समय आहार-जल का त्याग करना।—ऐसा राग आता है, किंतु वास्तव में आत्मा पर की क्रिया नहीं कर सकता। अज्ञान के कारण दो द्रव्यों में एकत्वबुद्धि रखनेवाला जीव ऐसा मानता है कि मैंने हरियाली का खाना छोड़ दिया है, मैंने आज आहार का त्याग किया है, अमुक द्रव्य का त्याग कर दिया है;—इसप्रकार त्याग का अभिमान करता है, किंतु मैं आहार ग्रहण कर सकता हूँ—छोड़ सकता हूँ, हाथ को उठाने या गिराने की क्रिया मेरी है; मैं परवस्तु को प्राप्त कर सकता हूँ, उसका त्याग कर सकता हूँ—यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है।

आत्मा नित्य अपने परिणामों का कर्ता-हर्ता है, किंतु आहार-जल आदि परद्रव्यों के ग्रहण-त्याग का कार्य, वह पर का कार्य है, उसे करने का सामर्थ्य किसी आत्मा में नहीं है।

**प्रश्न**—तो ज्ञानी यह सब कार्य किसलिये करते हैं ?

**उत्तर**—संयोगदृष्टिवाला दो द्रव्यों की एकताबुद्धि से ऐसा मानता है, किंतु उसकी यह मिथ्या कल्पना है, उसके विकल्परूप व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि इसने इसका किया, किंतु वास्तव में ऐसा नहीं है, क्योंकि जीव जो शरीर से बिलकुल भिन्न स्वरूपवाला है।

यह जीव अपने ज्ञानस्वभावरूप होने के कारण अपने भावों को ही कर सकता है। अमुक दशा में जब राग मंद होता है, तब सुदेवादि के आलम्बनरूप राग होात है, वहाँ कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु आदि के आलम्बन का त्याग अपने आप हो जाता है, अमुक प्रकार के आहार का त्याग करना, अमुक वस्तु छोड़ देना—ऐसा कथन चरणानुयोग के शास्त्रों में आता है और ज्ञानी को भी ऐसा राग आता है, तथापि वह मोक्षमार्ग नहीं किंतु बंधमार्ग है।

कोई निमित्त को मिला सके, या उसे दूर कर सके ऐसी शक्ति आत्मा में नहीं है, तथापि व्यवहार से ऐसा कहा जाता है—वह कथनमात्र है। ऐसा राग करूँ या छोड़ूँ, यह भी व्यवहार का कथन है। यदि राग का ग्रहण-त्याग आत्मा में (त्रिकाली स्वभाव में) हो तो वह कभी छूट नहीं सकता, लेकिन वह पराश्रय से होनेवाला क्षणिक एवं विरुद्धभाव होने के कारण स्वाश्रय करने से छूट जाता है; इसलिये रागादि, आत्मा का स्वभाव नहीं है। जो स्वभाव में नहीं है, वह अपने हित में-मोक्षमार्ग में कैसे सहायता कर सकता है ?

आज भगवान महावीर के जन्म-कल्याणक का दिन है। जन्म-जयंती दिवस तो साधारण लोगों का भी मनाया जाता है किंतु तीर्थंकर भगवान के जन्म कल्याणक पर तो स्वयं इन्द्र आकर

महोत्सव मनाते हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, तब से ज्ञायकस्वभाव की वीरता प्रगट होती है। सर्वज्ञ भगवान क्षुधा-तृषादि १८ दोष रहित होते हैं, सर्वज्ञदशा प्राप्त होने पर तीर्थंकर भगवान को वाणी का योग होता है। जो पात्र जीव को आत्मस्वभाव की ओर सन्मुख होने की प्रेरणा करे, वीतरागता एवं ज्ञातापना ही कर्तव्य है, ऐसा बतलाये, उस आत्मा को वीर कहते हैं।

वीर प्रभु का मार्ग तो अंतर में है। पूर्ण स्वरूप की रुचि-महिमा द्वारा मिथ्यात्व-रागादि की उत्पत्ति तथा राग की रुचिरूप दीनता न होने दे अर्थात् ज्ञाता रहे, उसमें वीर प्रभु का मार्ग है। भगवान महावीर द्वारा कहा हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप हित का उपाय, वह मोक्षमार्ग है; उस मोक्षमार्ग को—ऐसे वीर धर्मात्मा संत अंतर में आत्मतत्त्व में एकाग्रता के बल द्वारा साधते हैं। वीरप्रभु के पथ पर आरूढ़ हुआ महापुरुषार्थी कभी पीछे नहीं हटता। पथ पर आरूढ हुए सो हुए, अब केवलज्ञान लेकर ही रहेंगे, ऐसा निःसंदेह अपूर्व मार्ग इस काल में भी स्पष्ट रीति से समझा जा सकता है। मुनि हो वा गृहस्थ; देव, नारकी या तिर्यंच का शरीर हो किंतु मैं पर का ग्रहण-त्याग कर सकता हूँ, पर से किसी का कार्य हो सकता है, राग से कल्याण हो सकता है—ऐसा अभिप्राय किसी ज्ञानी का नहीं होता। निचली दशा में शुभाशुभराग होता है, किंतु उससे आत्मा का हित होता है; भगवान की भक्ति से कल्याण होगा, ऐसा कोई ज्ञानी नहीं मानता है। तथापि अशुभराग में प्रवृत्ति न हो, इसलिये भक्ति आदि का राग आता है।

मैंने अमुक वस्तु का त्याग किया, हरी का त्याग कर दिया; और अमुक वस्तुएँ ले सकता हूँ; इसका अर्थ यह हुआ कि—उस ओर के आलम्बनरूप राग का त्याग किया। राग का त्याग किया, यह भी व्यवहारकथन है। वास्तव में तो राग-द्वेषादि मलिन भावों का त्याग करना नहीं पड़ता, किंतु वीतरागी दृष्टि सहित जितने अंश स्वरूप में स्थिरता हुई, उतने अंश में रागादि उत्पन्न ही नहीं होते—ऐसी मर्यादा है।

हिंसादि अव्रत का त्याग किया, व्रत ग्रहण किये, अमुक वस्तु मैं ले सकता हूँ; मैंने स्त्री आदि का त्याग किया; वहाँ यह समझना कि इस इसप्रकार के राग का त्याग किया है अथवा उसे मंद किया है; किंतु यदि उससे कल्याण होना माने तो उसने मिथ्यात्व को ग्रहण किया है। शास्त्र में परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का कथन आता है, किंतु उसका अर्थ यह है कि यह ऐसा है नहीं, किंतु निमित्त-नैमित्तिक संबंध बताने के लिये उपचार से वह कथन किया है।

वास्तव में यदि आत्मा, परद्रव्यों का कर्ता-हर्ता—स्वामी हो तो उनसे भिन्न नहीं रह सकता।

शास्त्र में आता है कि धर्मात्मा जीव विशेष वैरागी होने पर नग्न होता है, वस्त्रादि छोड़ता है; उसका अर्थ यह नहीं कि आत्मा पर का ग्रहण-त्याग करता है, अथवा इच्छा के कारण वस्त्रादि का त्याग हुआ है; किंतु उसका अर्थ यह है कि महाव्रत धारण करने की योग्यता प्रगट हो, उस समय ऐसे विकल्प आते हैं कि यह त्याग करूँ, यह ग्रहण करूँ; किंतु कोई वास्तव में ऐसा माने कि—मैंने वस्त्रों का त्याग किया, मैं नग्न हुआ, शरीर की क्रिया व्यवहार से की जा सकती है; तो वह दो क्रियावादी है, दो द्रव्यों को एक माननेवाला मिथ्यादृष्टि है, जैनमत से बाहर है।

मैंने अमुक वस्तु का त्याग किया, इस मान्यता में ऐसा आया कि पहले मैं उसे ग्रहण कर सकता था। मैंने इतने रसों का त्याग कर दिया; किंतु भाई! तू कब पर का ग्रहण-त्याग कर सकता था? हाँ, ऐसा मानता है कि मैंने पर का कुछ किया, अशुभराग छोड़कर शुभराग ग्रहण किया,—यह सब व्यवहार का कथन है। ऐसा विकल्प आता है कि—इसका त्याग किया; इसका त्याग या ग्रहण करूँ; किंतु वास्तव में पर का कुछ नहीं कर सकता क्योंकि इच्छा या ज्ञान, पर का कुछ भी कार्य करने में अकिंचित्कर है। जो दो द्रव्यों को भिन्न नहीं मानता, उसे कर्तृत्व का भ्रम होता है।

शरीर नग्न है, अमुक संयोग छूट गये हैं, और बाह्य में ब्रह्मचर्य के शुभभाव हैं, इसलिये उसके आत्मा में वीतरागी चारित्र है—ऐसा नहीं है। शुभराग के आश्रय से चारित्र नहीं है, किंतु उस गुणस्थान में किसप्रकार का राग होता है, किसप्रकार के राग का अभाव होता है, उसका ज्ञान कराने के लिए व्यवहारनय से ग्रहण-त्याग के कर्तृत्व का कथन आता है; किंतु उसका अर्थ यह समझना कि—ऐसा नहीं है, किंतु इसप्रकार से कथन करने की पद्धति है। इसी का नाम व्यवहारनय का ग्रहण करना है।

निश्चयनय तो जैसा वस्तु का स्वरूप है, उसीप्रकार निरूपण करता है, इसलिये सत्यार्थ है; और व्यवहारनय एक को दूसरे के रूप में, अथवा किसी के कारण कार्य किसी में मिलाकर निरूपण करता है, इसलिये वह असत्यार्थ कथन करनेवाला है; इसलिये दोनों नय समकक्षी नहीं हैं।

सनातन दिगम्बर वीतराग पंथ जैनधर्म है, उसकी परम्परा में जन्म लेकर तत्त्व-अतत्त्व को न समझें, दो नयों के अर्थ को-प्रयोजन को न समझे, वे भ्रम से आत्मा को पर का कर्ता, हर्ता, स्वामी मानकर शरीरादि में एकत्वबुद्धि करते हैं। तत्त्व का जैसा स्वरूप है, उसीप्रकार न मानकर अन्यथा मानते हैं। मैं भाषा बोल सकता हूँ, मौन रह सकता हूँ, पर का कुछ कर सकता हूँ—यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है।

शास्त्र में परद्रव्य का निमित्त छूटने की अपेक्षा से (अर्थात् स्वाश्रय द्वारा निमित्त का आलम्बन छूटकर कितनी वीतरागता हुई, यह बताने के लिये) व्रत, तप, शील, संयमादि को मोक्षमार्ग कहा है, किंतु वह मोक्षमार्ग नहीं है। बाह्य वस्तु तो निमित्तमात्र है, उसका त्याग या ग्रहण करने का अधिकार आत्मा को नहीं है; पर की कोई भी क्रिया आत्मा के आधीन है ही नहीं।

मैंने राग मंद किया, इसलिये आहार का योग नहीं बना; मैंने आहार ग्रहण किया—त्याग किया, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। भले ही वह साधु नामधारी हो, किंतु वह जैनधर्म को नहीं मानता। आत्मा, परद्रव्य का ग्रहण-त्याग नहीं कर सकता, किंतु मिथ्याभाव को—रागभाव को छोड़कर अपने में सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्ररूपभाव कर सकता है अथवा मिथ्याभाव से विकार का कर्ता-भोक्ता बन सकता है, विपरीत मान सकता है, ऐसी मर्यादा है।

प्रत्येक द्रव्य तीनों काल पर से भिन्न और अपने त्रैकालिक स्वभाव से अभिन्न है; पररूप हुए बिना पर का कुछ भी करता है, ऐसा माननेवाला दो द्रव्यों को भिन्न नहीं मानता, किसी को भी स्वतंत्र सत्‌रूप नहीं मानता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता, यह बात सुनकर कुछ लोग जैनधर्म का (वस्तु स्वभाव का) निषेध करते हैं, अथवा तो यह बात एकांत नियतिवाद है—ऐसा कहकर, शकडाल कुम्हार की कथा द्वारा, भगवान महावीर ने पुरुषार्थ से पर का कुछ हो सकता है, ऐसा कहा था, ऐसी अपनी मानी हुई बात को महावीर के नाम चढ़ाते हैं, किंतु उन सर्वज्ञ भगवान ने क्या कहा और जीव का पुरुषार्थ क्या है ? जीव किसमें पुरुषार्थ कर सकता है, उसकी उन्हें खबर नहीं है। आत्मा क्या कर सकता है, वस्तु निरंतर निज शक्ति से अपनी नवीन-नवीन पर्यायों की प्राप्तिरूप उत्पत्ति और पूर्व पर्यायों का व्यय किया करती है, उसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है—ऐसे सत्य की संयोगी दृष्टिवान को जरा भी खबर नहीं है।

आत्मा तो भेदविज्ञान के द्वारा रागादिक को छोड़कर स्वरूप में एकाग्रता का अभ्यास करके वीतरागता प्रगट करे—ऐसा पुरुषार्थ आत्मा में होता है। राग-इच्छा-विकल्प करने का विपरीत पुरुषार्थ भी अपने में ही होता है।

वीतरागता प्रगट करे तो वहाँ राग का अभाव होने पर निमित्त का आलम्बन छूटने की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है कि भगवान नेमिनाथ ने वस्त्राभूषण छोड़े; परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। क्योंकि उन्होंने भी पर का ग्रहण-त्याग नहीं किया, किंतु राग का त्याग एवं स्वभाव का ग्रहण किया है।

गिरनारजी की यात्रा को गये और वहाँ पर्वत पर चढ़े—उतरे ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, (ऐसा राग आता है); किंतु ऐसा नहीं है; आत्मा शरीर को ऊपर ले जाये या नीचे उतारे, ऐसा सामर्थ्य किसी भी आत्मा में नहीं है; मात्र उस समय निमित्त-नैमित्तिक संबंध देखकर इसप्रकार का विकल्प हो तो उसे उपचार से कर्ता कहा जाता है, किंतु वास्तव में शरीर की क्रिया मैंने की, या मैंने उसे रोका—ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध उस समय कैसा होता है, यह बताने के लिये व्यवहारनय के कथन शास्त्र में बहुत आते हैं, किंतु उन कथनों के कारण भ्रम नहीं है, स्वयं संयोगीदृष्टि से दो द्रव्यों की एकता मानता है, दो द्रव्यों की स्वतंत्र भिन्न क्रिया नहीं मानता, संयोग को ही देखता है, इससे भ्रम होता है।

प्रत्येक वस्तु अपने कारण से निरंतर परिणमन करती है, इसप्रकार उसके स्वभाव की ओर से वस्तु को नहीं देखता, किंतु संयोगीदृष्टि से देखता है; इसलिये जहाँ देखता है, वहाँ बिलकुल विपरीत ही देखता है। भावलिंगी मुनि की प्रत्येक प्रतिज्ञा में दृढ़ता होती है, आहार ग्रहण करने का विकल्प आता है, गमन करते हैं, संकल्प-प्रतिज्ञा करते हैं कि आहार देनेवाले के हाथ में अमुक वस्तु होगी तो आहार ग्रहण करूँगा; अमुक चेष्टा हो या प्रार्थना करे तो आहार ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं; परंतु उसका अर्थ यह नहीं कि वे पर को ग्रहण कर सकते हैं; क्योंकि पर के ग्रहण-त्याग का कथन तो व्यवहार से है। शरीर, आहार व उसकी क्रिया, संयोग की प्राप्ति, राग का होना—यह सब तो अपने आश्रित स्वतंत्र हैं, किसी दूसरे के कारण किसी की क्रिया नहीं होती; संयोग से किसी की क्रिया नहीं हुई, तथापि दूसरे के कारण किसी दूसरे में कार्य हुआ, ऐसा बतलाना वह मात्र व्यवहार की रीत है। व्यवहार का कथन, कथन की अपेक्षा से व्यवहार में कब सत्य कहा जाता है कि निश्चय से जो कथन है, उसका स्वीकार करके उसको उसी रूप में माने, किंतु जो दोनों नयों के कथन को समान और सत्यार्थ मानता है, उसको दोनों नयों का यथार्थज्ञान नहीं है किंतु मिथ्यात्व ही है।

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सुदृष्टि निश्चय होय है॥

*(समयसार, गाथा ११)*

शास्त्र में व्यवहारनय के लिये सर्वत्र ऐसा कहा है कि वह परद्रव्याश्रित कथन करता है, किसी के कारण-कार्य को किसी में मिलाकर कथन करता है, और ऐसी श्रद्धा से तो मिथ्यात्व है,

इसीलिये व्यवहार के कथन को सत्यार्थ मानने की श्रद्धा छोड़ना और निश्चयनय का विषय सत्यार्थ है, ऐसी श्रद्धा करना। व्यवहारनय का विषय है अवश्य, उसका जहाँ जैसा हो, उसीप्रकार जानना प्रयोजनवान है, परंतु व्यवहारनय सर्वत्र अभूतार्थ-असत्यार्थदर्शित है—ऐसी श्रद्धा करना और व्यवहार से जितने कथन हों, उनका निश्चयनयानुसार अर्थ समझना।

जिसप्रकार हाथी के दाँत बाहरी शोभा के अलग हैं और अंदर चबाने के अलग हैं, इसप्रकार व्यवहारनय का कथन अलग है, निश्चयनय के कथन से विरुद्ध है। यदि दोनों नय समान हों तो उनके परस्पर विरुद्धतासहित लक्षण क्यों हैं ?

**प्रश्न**—शास्त्र में सीधा कथन न करके इसके द्वारा इसका ग्रहण-त्याग-रक्षण होता है, ऐसा क्यों लिखा हैं ?

**उत्तर**—भाई, कौन लिख सकता है और कौन बोल सकता है; मात्र ऐसी इच्छा थी। वहाँ यदि उसी इच्छानुसार वाणी या लेख हो जाये तो इच्छा आदि को उपचार से कारण कहा जाता है; वास्तव में तो जीव से, इच्छा से शब्दों की या शरीर की क्रिया नहीं हुई है, परंतु पुद्गल से ही हुई है, ऐसा निश्चयनय से सत्य अर्थ को समझे तो निमित्त के व्यवहारकथन को—'इसका अर्थ ऐसा नहीं है, किंतु निमित्तादि का ज्ञान कराने के लिये उपचार से इसप्रकार कहा है'—इसप्रकार व्यवहार को जानना, व्यवहार से सत्य माना जाता है; किंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं होता कि व्यवहार से पर का कुछ कर सकता है।

एक आकाश क्षेत्र में परस्पर अवगाह संबंध बताने के लिये आत्मा को मूर्तिक कहा है; नर, नारक, स्त्री, काला, गोरा कहा है; किंतु आत्मा मूर्तिक अथवा शरीररूप किसी प्रकार नहीं हुआ; तथापि व्यवहारनय से इसप्रकार कहने की रीत है। कोई बारम्बार प्रश्न करे, श्रवण करे, फिर भी तत्त्व समझ में न आये तो क्या किया जाय ? उसका उत्तर यह है कि—अपने हितरूप प्रयोजनसहित बहुत दिन तक श्रवण करने के लिये आओ; परिचय करो, तो समझ में आयेगा ? इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे के कारण समझ में आयेगा; किंतु तुम सच्ची जिज्ञासा से तत्त्वज्ञान का अभ्यास करोगे तो अपने आप समझ में आयेगा। स्वयं समझे, तभी दूसरे को निमित्त मात्र कारण कहा जाता है। फिर विनय से, नम्रता से ऐसा कहते हैं कि—आपके कारण मैं समझा; वहाँ वास्तव में ऐसा नहीं है, किंतु यह व्यवहारनय की रीत है।

पशुओं को बंदीखाने में देखकर नेमिनाथ भगवान को वैराग्य उत्पन्न हुआ और रथ को मोड़कर वन की ओर चल दिये।

उसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि संयोग के कारण जीव में फेरफार हुआ तथा पर की क्रिया किसी से बदली जा सकती है; किंतु निमित्त से ऐसा कथन किया जाता है।

इनसे समाज में धर्म की प्रभावना हुई, और इनसे रुक गयी; इसका अर्थ यह है कि किसी ने किसी में फेरफार नहीं किया किंतु उनको योग्यतानुसार ही हुआ है। जोर से बोलो, धीरे बोलो, उसका अर्थ यह है कि ऐसी इच्छा होती है। इच्छा हुई; इसलिए वाणी धीरे बोली जाती है, ऐसा नहीं है। तीन काल-तीन लोक में इच्छा से वाणी नहीं बोली जाती। वाणी उत्पन्न होती है, तब इच्छा को निमित्त कहा जाता है।

आज मुझे उपवास करना है, आज अमुक वस्तुएँ रखकर शेष का त्याग करना है। पर का ग्रहण-त्याग कौन कर सकता है? किंतु ऐसा राग आता है, उसका निमित्त से कथन करनेवाले व्यवहार की यह रीत है। इसप्रकार हजारों दृष्टांतों से व्यवहारनय असत्य अर्थ को बतानेवाला है।

वास्तव में तो प्रत्येक पदार्थ अपनेरूप से ध्रुव रहकर अपने आधार से अपनी नयी-नयी अवस्थारूप कार्य निरंतर करता ही रहता है। कोई द्रव्य अपनी क्रिया से रहित नहीं है कि वह दूसरे का कर सके, यदि दूसरे का कार्य करे—कराये तो वह अपने रूप नहीं रहे। कोई परमाणु दूसरे के आधीन नहीं है। शरीर और उसकी क्रिया अर्थात् उसकी अवस्था का पलटना उसके आधीन है, दूसरे के आधीन नहीं है। जीव, अजीव प्रत्येक तत्त्व निरालम्बी हैं, वे किसी के आधार से नहीं हैं, तथापि एक को दूसरे का आधार कहना, वह कथनमात्र व्यवहार है।

तीर्थंकर भगवान गृहस्थदशा में थे; उन्होंने वस्त्र, छोड़े, आहार का ग्रहण-त्याग किया, ये सब व्यवहार-कथन असद्भूत उपचार से है। उनको सत्यरूप से मान ले तो स्वतंत्र द्रव्य का निषेध होता है; वीतरागता का शत्रु हो जाता है।

संयोग और शरीर की क्रिया में अज्ञान के कारण कर्तृत्व-भोक्तृत्व-स्वामित्व मानता था; शुभाशुभराग को अपना कर्तव्य मानता था, अब भेदविज्ञान द्वारा प्रतीति हुई कि—प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल पर से भिन्न और अपनी समस्त शक्तियों से अपने में परिपूर्ण है। मैं देहादि का कर्ता-भोक्ता अथवा स्वामी नहीं हूँ; मैं तो त्रिकाल ज्ञानानन्दमय आत्मा हूँ—ऐसा अनुभवरूप निश्चय होने के बाद अंतर में एकाग्रता के बल से स्थिर होने से राग छूटता जाता है, वहाँ भूमिकानुसार परद्रव्य के आलम्बन का अभाव होने की अपेक्षा से परद्रव्य का ग्रहण-त्याग व्यवहार से कहने में आता है, किंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। आत्मा में निश्चय और शरीर की क्रिया में उसका व्यवहार, ऐसा नहीं है।

आत्महित के मार्ग में प्रारम्भ से ही तत्त्वज्ञान द्वारा शुभाशुभभावों का स्वामित्व तथा आश्रय छोड़कर ध्रुव ज्ञातास्वभाव का स्वामित्व और आश्रय करने की विधि है; पश्चात् उसमें विशेष स्थिरता करे, उस अपेक्षा से (पर का आलम्बन छूटने की अपेक्षा से शरीर की क्रिया व्रत, शील, संयमादिक को उपचार से—व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा है, किंतु वहाँ उसी को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना, क्योंकि यदि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा में हो तो आत्मा, परद्रव्य की क्रिया का कर्ताहर्ता हो जाये। किंतु कोई भी द्रव्य किसी के आधीन है ही नहीं। आत्मा तो अपने रागादिभावों को छोड़कर वीतराग होता है, इससे निश्चय से वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है। निचलीदशा में अंशतः वीतरागता और अमुक प्रकार की सरागता एक साथ होती है, इसलिये उन वीतरागभावों का और व्रतादिक का कदाचित् निमित्तनैमित्तिकरूप से संबंध होता है कि ऐसा इतना वीतरागभाव जहाँ पर होता है, वहाँ इसप्रकार का शुभराग निमित्तरूप से होता है (किंतु उससे विरुद्ध चाहे जैसा निमित्त-व्यवहार नहीं होता) ऐसा बताने के लिये उपचार से व्रतादिक शुभास्रव को मोक्षमार्ग कहा है किंतु वह कथनमात्र ही है। परमार्थ से वह मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा ही श्रद्धान करना। इसीप्रकार अन्य स्थानों में भी व्यवहारनय की कथन पद्धति जानना, उसका नाम व्यवहारनय का ग्रहण है। किंतु व्यवहारनय का आश्रय करने से मोक्षमार्ग होगा, यह मान्यता मिथ्या है। मिथ्याज्ञान में निश्चयनय-व्यवहारनय होते ही नहीं।

निश्चय अर्थात् वास्तव में वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है; किंतु निचली भूमिका में अमुक राग होता है, वह राग मोक्षमार्ग नहीं है। व्रतादि का राग शुभ है, अव्रत का राग, वह अशुभ है; दोनों आस्रवतत्त्व हैं, मलिन हैं, बंध के ही कारण हैं, दुःखरूप हैं, वीतरागता से विरुद्ध हैं—ऐसा कषायरहित स्वभाव की दृष्टिवाला मानता है, तथापि चारित्र में राग सर्वथा नहीं छूटता, यह जानकर अशुभ में—पाप में प्रवृत्ति न हो; इसलिये अमुक मात्रा में शुभराग में प्रवृत्ति करता है। किंतु उस शुभराग द्वारा, व्यवहाररत्नत्रय द्वारा अथवा शरीर की क्रिया से वीतरागभाव है, ऐसा नहीं मानता।

वस्त्रों का त्याग किया, घर छोड़ा, इसका अर्थ उनका ममत्व छोड़कर वैराग्य को धारण किया। बाह्य वस्तु में, शरीर की क्रिया में शुभ-अशुभपना नहीं, फिर भी व्यवहार से ऐसा कथन आता है कि अशुभ द्रव्य का आलम्बन छोड़कर सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का आलम्बन लेना चाहिये; ऐसा शुभभाव आता है, वहाँ अमुक संयोग तथा राग का त्याग इस आत्मा ने किया—ऐसा उपचार से कथन आता है। परंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं है। वास्तव में तो श्रद्धा, ज्ञान व चारित्र में ज्ञानस्वभाव

का ग्रहण होने पर उसप्रकार का राग उस भूमिकानुसार उत्पन्न होता ही नहीं, किंतु वीतरागता उत्पन्न की, वहाँ उतने राग का अभाव हुआ; निमित्त के आलम्बन का अभाव हुआ, ऐसा बताने के लिये निमित्तकर्ता का कथन करने की पद्धति है—वह व्यवहार है।

'उपादान विधि निर्वचन, है निमित्त उपदेश' उपदेश में आता है कि—जिनमंदिर में नित्य दर्शन करने के लिये जाना चाहिये। जूते निकालकर, पैर धोकर मंदिर में प्रवेश करें और मस्तक झुकाकर अष्टांग नमस्कार करें। तो क्या आत्मा, परद्रव्य की क्रिया करता होगा? नहीं, किंतु इसप्रकार का शुभराग भक्तिवान को आता है। भगवान वीतराग हैं, उनकी पहिचान होते ही उनके प्रति बहुमान—विनय का ऐसा शुभराग होता है।

मंदिर में चमड़ा, लकड़ी, तलवार इत्यादि लेकर नहीं जाते, इसका अर्थ यह है कि—उस समय ऐसा राग ही नहीं होता। व्यवहारनय के कथन का अर्थ ऐसा नहीं लगाना कि आत्मा को शुभराग से लाभ होता है अथवा वह पर का ग्रहण-त्याग कर सकता है।

शास्त्र में कहा है कि प्रत्येक कथन का अर्थ पाँच प्रकार से समझना चाहिये। शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ।

( १ ) **शब्दार्थ**—प्रकरण के अनुसार शब्द का अर्थ।

( २ ) **नयार्थ**—निश्चयनय अथवा व्यवहारनय—इनमें से कौन सी दृष्टि से निरूपण है।

( ३ ) **मतार्थ**—यहाँ सांख्यादिक कौन से एकांत मत का निषेध तथा सम्यक् अनेकांत का स्थापन करनेवाला कथन है?

( ४ ) **आगमार्थ**—सर्वज्ञ वीतराग कथित शास्त्र में तत्त्वार्थों का स्वरूप इसप्रकार कहा है—ऐसा शास्त्राधार देना।

( ५ ) **भावार्थ**—तात्पर्य; हेय-उपादेय क्या है?

जो शब्दों को ही पकड़ता है किंतु शास्त्र के गूढ़ अर्थ को समझने का प्रयत्न नहीं करता, उसका श्रम व्यर्थ जाता है। उसका एक दृष्टांत यह है:—मरने से पूर्व पिता ने लिखा था कि शंकर के मंदिर के शिखर पर कलश के नीचे बहुमूल्य भंडार गाड़ा है। (चैत्र सुदी ८, प्रातः ८ बजे) पुत्र ने यह पढ़कर मंदिर खरीदा और तोड़ा; किंतु धन नहीं मिला। लड़के ने निराश होकर पिता के मित्र से बात कही, तब उन्होंने कहा कि अरे, नादान! तेरे पिता अपना धन दूसरे के स्थान में रखें, ऐसे मूर्ख नहीं थे। उन्होंने जो लिखा है, उसका यह अर्थ है कि—चैत्र सुदी ८ के प्रातः काल ८ बजे तेरे आँगन

में उस मंदिर के शिखर की छाया जहाँ पर पड़े, वहाँ खोदने से धन की प्राप्ति होगी। इसीप्रकार ज्ञानी के कथन का तात्पर्य क्या है, वह पहले समझना चाहिये। प्रत्येक कथन का अर्थ निश्चयनय से जानकर, शास्त्र में व्यवहारनय का कथन हो तो भी उसमें से निश्चय द्वारा अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

मिथ्यात्व-रागादि की परतंत्रता तेरे अपने अपराध से है; उसकी निवृत्ति स्वतंत्रता-भेदविज्ञान द्वारा अंतर में एकाग्रता से है; इसलिये ऐसी स्वतंत्रता की प्राप्ति का पुरुषार्थ करने की शास्त्र में आज्ञा है:—

बीत्यो काल अनंत ते कर्म शुभाशुभ भाव,
तेह शुभाशुभ छेदतां उपजे मोक्षस्वभाव।

जैनधर्म राग के आश्रयरहित वीतराग-विज्ञानमय है। अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा में संयोग और विकार की अपेक्षा रहित निर्मल श्रद्धा, ज्ञान तथा स्थिरता, सो जैनधर्म है। बीच में व्रतादि का शुभराग आता है, वह जैनधर्म नहीं है। धर्मी जीव को निचली भूमिका में ऐसा शुभराग होता है; इसलिये वह मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं है।

यदि वीतरागता (मोक्षमार्ग) के साथ व्रतादि शुभराग का वास्तव में संबंध हो अर्थात् वह वास्तव में मोक्ष का कारण हो तो मोक्षदशा में भी वह रहना चाहिये।

**प्रश्न**—यदि व्रतादि मोक्षमार्ग नहीं है तो शास्त्र में उनका आचरण करने का उपदेश क्यों है ?

**उत्तर**—व्रतादि का निरूपण दो प्रकार से है। वास्तव में तो वीतरागी दृष्टि और चारित्र द्वारा ज्ञानानंदस्वभाव में स्थिर—एकाकार होना, सो निश्चय व्रत है। परिपूर्ण स्थिर न रह सके, वहाँ भूमिकानुसार इसप्रकार का शुभराग होता है, वह व्यवहार-व्रत है। मुनिदशा में अट्ठाईस मूलगुणों का पालन, नग्न शरीर ही निमित्तरूप से होता है, निश्चय श्रद्धा-ज्ञानसहित चारित्र में अंशतः शुद्धता वर्तती है, वहाँ इसप्रकार व्रतादि होते हैं, यह बतलाने के लिये व्रतादिक को व्यवहारनय से मोक्षमार्ग कहा है। किंतु वह कथनमात्र है। शास्त्र में उसे इस अपेक्षा से कारण कहा है, किंतु वह नाममात्र कारण है; यदि वह वास्तविक कारण हो तो वीतरागता भी मोक्षमार्ग और उससे विरुद्ध रागभाव भी मोक्षमार्ग सिद्ध होगा; इसलिये व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो, वह निमित्त-नैमित्तिक का यथास्थान संबंध बताने के लिये ही है। इतना जानने के लिये व्यवहारनय प्रयोजनवान है, किंतु वह वास्तविक मोक्षमार्ग है, यह बताने के लिये व्यवहारनय नहीं है—ऐसी श्रद्धा करना।

परद्रव्य की अवस्था, देह की क्रिया तो व्यवहार से भी कोई नहीं कर सकता; किंतु दो द्रव्यों में एकता माननेवाला विपरीत ही देखता है और मानता है कि मैं पर से कुछ कर सकता हूँ। पर का किया जा सकता है; किंतु उसका अभिमान नहीं करना चाहिये; यह मान्यता भी मिथ्या ही है। ज्ञानी को पर के ग्रहण-त्याग का विकल्प आता है, किंतु उसका वह कर्ता या स्वामी नहीं है। व्यवहारनय से जीव को पर का कर्ता, भोक्ता अथवा स्वामी कहना, वह कथनमात्र है, ऐसा वह जानता है।

शुभाशुभराग जीव की अवस्था में होता है। परिणमन की अपेक्षा से जीव उसका कर्ता है। ज्ञानी भी ऐसा मानता है किन्तु श्रद्धा-ज्ञान की अपेक्षा से उसका कर्ता-भोक्ता अथवा स्वामी नहीं है।

मोक्षमार्ग का सच्चा कारण व्रतादि शुभ व्यवहार नहीं है तो क्या है ? शास्त्र में दो कारण कहे हैं न ? कि—संयोग और विकार से भेदज्ञान करके त्रिकाली शुद्ध ज्ञायकस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और वीतरागभावरूप चारित्र तो चौदहवें गुणस्थान तक व्यवहारकारण है; और अंतरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्य स्वभाव—कारणपरमात्मा है, वह निश्चयकारण है।—ऐसा स्वीकार करने पर अपूर्ण निर्मलतारूप वीतरागता के भेद, वह व्यवहारकारण है और अभेद तथा स्वाश्रय की अपेक्षा से वही निश्चयकारण है। चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय की शुद्धपर्याय को भी मोक्ष का निश्चयकारण और व्यवहारकारण कह सकते हैं तथा निचली भूमिका में उसकी भूमिका के योग्य व्रतादि शुभराग होता है, वह तो असद्भूत व्यवहारनय से उपचार काररण है; सच्चा कारण नहीं है। शास्त्र का अर्थ न समझनेवाले जीव का अंश अजीव में, और अजीव का अंश जीव में मिलाकर व्यवहार के निरूपण को निश्चय के समान सत्यार्थ मानते हैं। इसलिये उन्हें शास्त्र में कहे हुये व्यवहारनय की भी खबर नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय अभूतार्थ मोक्षमार्ग है अर्थात् वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं है; तथापि अज्ञानी जीव अपनी बुद्धि के दोष से उस रागभाव को भूतार्थ मोक्षमार्ग मानते हैं।

यह बात समझनेयोग्य है। यह अधिकार आज भगवान महावीर के जन्म-कल्याणक पर आया है। भगवान होने के लिये ही यह बात कही है। किसी के घर की यह कल्पना नहीं है। बाह्यक्रिया, व्रतादि के शुभभाव ज्ञानी के भी होते हैं और वहाँ उसकी भूमिका अनुसार वैसा ही संबंध होता है, उसका निषेध नहीं करते, किंतु जो उसे वास्तविक साधन अर्थात् मोक्ष का कारण मानते हैं, उनकी मिथ्या मान्यता का निषेध है।

कुछ लोग ऐसा झूठा आक्षेप करते हैं कि—सोनगढ़ में तो देव, शास्त्र, गुरु की श्रद्धा को तो

मिथ्यात्व कहते हैं; व्रत, पूजा, उपवास को मिथ्यात्व कहते हैं; किंतु ऐसा नहीं है। हाँ, वह शुभराग है, पुण्य है, आस्रवतत्त्व है। उसे उसी रूप में न मानकर शुभराग, मोक्ष का कारण है; हितकारी है—ऐसा मानना, सो मिथ्यात्व है—ऐसा यहाँ कहते हैं। शुभास्रव को धर्मरूप मानने की मिथ्या श्रद्धा का निषेध करके, सत्यार्थ धर्म क्या है, वह यहाँ बतलाया जाता है। अनंत बार धर्म के नाम पर ऐसे शुभभाव किये किंतु वे वास्तव में मोक्ष का कारण नहीं बन सके; क्योंकि जितनी शुभ अथवा अशुभ वृत्तियाँ उठती हैं, वह सब राग है—दोष है।

जिसने इस बात को रुचिपूर्वक नहीं सुना, उसे कठिन मालूम होती है, जैसे मुनिपद धारण करने के बाद की उच्च भूमिका की यह बात हो! समाज में आजकल यह बात नहीं चलती, इसलिये इसे सुनते ही अरे रे! धर्म का सर्वनाश हो जायेगा! हमारे माने हुए धर्म को कौन मानेगा?—इसप्रकार निमित्ताधीन दृष्टिवालों को नवतत्त्वों के भिन्न-भिन्न स्वरूपों की खबर नहीं है।

हिंसा के भाव पापबंध के तथा अहिंसा के भाव पुण्यबंध के कारण हैं। वह जीवद्रव्य की विकारी अवस्था है; किंतु उसके कारण बाह्य-क्रिया हुई हो, ऐसा नहीं है; शरीर की क्रिया के कारण जीव में पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म नहीं हैं; दया, दान, सत्य आदि का शुभभाव आया, वह आस्रवतत्त्व है—आत्मा का धर्म नहीं है; यदि होता तो सिद्ध परमात्मा में भी वह होना चाहिये। परमार्थ से, तत्त्वदृष्टि से देखने पर शुभ-अशुभभाव अशुद्धरूप होने से हितरूप नहीं हैं, धर्म नहीं है—ऐसी प्रथम से ही श्रद्धा करनी चाहिये। दया-दानादि के शुभभाव आते हैं किंतु धर्मी उनको मोक्षमार्ग नहीं मानते। विरले जीव वीतराग मार्ग का आदर करते हैं। वीर का पंथ संसारमार्ग से विरुद्ध होने के कारण कायर उससे काँपते हैं।

हिजड़े (नपुंसक) सैनिक की पोशाक पहिनकर युद्ध में नहीं लड़ सकते; उसीप्रकार जिन्होंने आत्मबल (वीर्य) को पुण्य-पाप के धर्म मानकर लगाया, वे आत्महित के कार्य में नालायक हैं, असमर्थ हैं। पुण्य चाहिये; प्रथम शुभरागरूप व्यवहार चाहिये, निमित्त चाहिये, ऐसी पराश्रय की श्रद्धा करनेवाले वीर्यहीन नपुंसक हैं; अनादिरूढ़ व्यवहार में विमूढ़ हैं; इसलिये वे प्रौढ़ विवेकवाले निश्चय से अनारूढ़ हैं—अर्थात् आत्महितरूप स्वकार्य में प्रमादी होकर सो रहे हैं।

वीतरागभाव से ही धर्म होता है—ऐसी श्रद्धा छोड़कर जो पुण्य में, दया, दान, पूजा के शुभराग में धर्म मानते हैं, वे चैतन्य की जागृति रहित होने से वीर्यहीन, नपुंसक हैं।

चैतन्यस्वभाव का आलम्बन, वह धर्म है, धर्म का कारण है। निचली भूमिका में व्रत, तप,

दान, पूजा, भक्ति आदि के शुभभाव आते हैं किंतु वह पराश्रयरूप राग हैं, बंध का ही कारण है, स्वयं बंधभाव है, उसको कथंचित् व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा हो, वहाँ समझना कि ऐसा नहीं है क्योंकि वह मलिन भाव-आस्रवतत्त्व है। उसे जो धर्म मानें-मनायें, वे हिंसक हैं-मिथ्यादृष्टि हैं, अधर्मी हैं; राग को धर्म माननेवाले जैनशासन के लुटेरे-डाकू हैं।

श्री टोडरमलजी ने पूर्वाचार्यों के कथन का आधार लेकर निश्चय-व्यवहार के स्वरूप का यथावत् निरूपण किया है।

श्री कुंदकुंदाचार्य तथा श्री अमृतचंद्राचार्य ने भी ऐसा ही कहा है। व्यवहारनय अभूतार्थदर्शी है; शुद्धनय भूतार्थदर्शी है। भूतार्थ का आश्रय करनेवाला सम्यग्दृष्टि होता है।

व्यवहारनय का विषय जहाँ जैसा हो, वैसा जाननेयोग्य है; किंतु मोक्षमार्ग के लिये व्यवहारनय आश्रय करनेयोग्य नहीं है।

जिसको संसार दावानल जैसा लगा हो, जो जन्म, जरा, मरण का अंत करना चाहता हो, उसके लिये यह बात है।

**प्रश्न**—शुभराग से कल्याण नहीं होता, फिर भी धर्मात्मा जीव भक्ति, पूजा, दया, दान, व्रतादि क्यों करते हैं ?

**उत्तर**—धर्मी जीव श्रद्धा में उन्हें अपना कर्तव्य नहीं मानते, तथापि अशुभ से बचने के लिये ऐसा शुभभाव आता है। इन्द्र भी भगवान की भक्ति करते हैं। शुभराग के काल में ऐसा राग होता है; किंतु उस राग के कारण शरीर की क्रिया होती है, ऐसा नहीं है। 'हे नाथ! आपकी भक्ति से मुक्ति मिलेगी'—इसका यह अर्थ समझना चाहिये कि—'ऐसा है नहीं,' किंतु इसप्रकार का राग बीच में आता है। उसे वीतरागता के बल से तोड़कर मैं आप जैसा ही पूर्ण वीतराग होनेवाला हूँ। प्रथम से ही राग का अभाव करने की श्रद्धा है, तब उसके शुभराग को उपचार से परम्परा मुक्ति का कारण कहते हैं, किंतु वह कथनमात्र है। वास्तव में वह कारण नहीं है—ऐसा निर्णय करना चाहिये।

* * *

महा मंगलरूप परिवर्तन के दिन अपरिवर्तनशील ज्ञायकस्वभाव का एवं मोक्षमार्ग का अचल आदर तथा पंच परावर्तनरूप संसार का अभाव करनेवाले श्री सद्गुरुदेव की जय हो।

## परम उपकारी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के

# पुनीत विहार के कार्यक्रम

| | |
|---|---|
| बांकानेर ( सौराष्ट्र ) | चैत्र सुदी ८ से १३ महावीर जयंती |
| | तारीख १-४-६३ से ६-४-६३ तक |
| जामनगर | तारीख ७ से १०-४-६३ |
| गोंडल | तारीख ११ से १२-४-६३ |
| जेतपुर | तारीख १३ से १४-४-६३ |
| वडीआ | तारीख १५-१६ |
| वींछिया | तारीख १७ से २०-४-६३ |
| लाठी | तारीख २१ से २५-४-६३ ( वै० सु० २ जन्म जयंती ) |
| सुरेन्द्रनगर | तारीख २६ से २९-४-६३ |
| जोरावरनगर | तारीख ३०-४-६३ से ६-५-६३ ( पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ) |
| वढ़वाण शहर | तारीख ७ से ९-५-६३ |
| लींबड़ी | तारीख १० से १२-५-६३ |
| दहेगांव ( अहमदाबाद ) | तारीख १३ से १६-५-६३ ( वेदी प्रतिष्ठा ) |
| अहमदाबाद | तारीख १७ से २०-५-६३ । बाद |

भोपाल में जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव में पूज्य स्वामीजी पधारेंगे।

## परम उपकारी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के

# पुनीत विहार के समाचार

**राजकोट**—(सौराष्ट्र) फाल्गुन सुदी ६ दिगम्बर जैन संघ द्वारा पूज्य गुरुदेव का भव्य स्वागत हुआ, मंगल प्रवचन के बाद २२ दिन तक श्री नियमसारजी शुद्धभाव अधिकार तथा समयसारजी बंध अधिकार के ऊपर अपूर्व प्रवचन हुए। प्रतिदिन दो बार प्रवचन, एक बार रात्रिचर्चा होती थी, बड़ी संख्या में धर्म जिज्ञासुओं ने लाभ लिया।

**राजकोट**—सौराष्ट्र में सबसे बड़ा शहर है, ढाई लाख की आबादी है। बड़ी संख्या में जैन-जैनेतर समाज पूज्य स्वामीजी को अतिशय पूज्य मानते हैं, फिर भक्ति और उत्साह का वर्णन क्या करना... रात्रिचर्चा में भी विशेष तत्त्वज्ञान प्राप्त हो इस हेतु से अनेक सूक्ष्म प्रश्नों का प्रवाह चालू रहता था। इसप्रकार यहाँ के प्रवचनों में तथा रात्रिचर्चा समाधान में विशेषता होने से बाहर गाँव से खास लाभ लेने के इच्छुक मेहमानों की संख्या भी अच्छी थी। दिगम्बर जैन संघ राजकोट द्वारा सभी के लिये उत्तम व्यवस्था थी।

**फाल्गुन सुदी १२**—जिनमंदिरजी की वर्षगाँठ का महोत्सव उल्लास पूर्वक मनाया गया, श्री जिनेन्द्र भगवान की विशाल रथयात्रा भक्ति, भजन सहित शहर में घूमकर जिनमंदिर के समीप विस्तृत प्रवचन मंडप जो नया बना है, वहाँ श्रीजी को विराजमान करके अभिषेक, पूजन करने में आया था। साधर्मियों का मेला, प्रेम और उत्साह देखते ही बनता था।

स्व० श्रेष्ठीवर्य श्री नानालाल जसाणी के सभी कुटुम्बीजन बम्बई से पूज्य स्वामीजी के दर्शनार्थ और शोक शमनार्थ पवित्र वाणी सुनने के लिये आये। स्वर्गस्थ आदर्श धर्मात्मा की पवित्र स्मृति में उन सभी ने ७५०००, पचहत्तर हजार रुपया दान में देने का विचार प्रगट किया। और १५०००, रुपये तो तुरंत अलग-अलग स्थानों में धार्मिक तथा सामाजिक खाते में दे दिया।

राजकोट में पूज्य स्वामीजी के प्रवचन विशेष सूक्ष्म होने से उनका लाभ लेने के लिये ही दिल्ली, भोपाल, गुना, इन्दौर आदि से खास-खास जिज्ञासु आये थे।

जैन-जैनेतर समाज को अपूर्व लाभ का कारण ऐसा धन्य प्रसंग हर साल प्राप्त करने के लिये राजकोट दिगम्बर जैन संघ और उनके कार्यवाहकों को धन्यवाद। यहाँ कई नये-नये साधर्मी बन रहे हैं, समझपूर्वक जैनधर्म स्वीकृत कर रहे हैं, स्वयमेव प्रचार बढ़ रहा है।

**थान**—तारीख २३-६-६३, जनसंख्या ९०००। पूज्य स्वामीजी का विशाल जनसमुदाय ने स्वागत किया, धर्म जिज्ञासुओं ने प्रवचन में तथा रात्रिचर्चा में बहुत उत्साह दिखलाया।

**चोटीला**—तारीख २४-२५ जनसंख्या ८०००। यहाँ से राजकोट ३० मील दूर है। रविवार का दिन होने से मोटर द्वारा करीब १०० भाई-बहन राजकोट से पूज्य स्वामीजी के स्वागत व प्रवचन में आये थे। स्वामीजी के स्वागत के बाद मंगल प्रवचन, रात्रिचर्चा और दिगम्बर जैन मंदिर में भक्ति का, धर्म जिज्ञासुओं ने बहुत प्रेम व उत्साह से लाभ लिया। धर्म जिज्ञासु वर्ग दूसरे गाँवों से भी स्वामीजी का उपदेश श्रवण करने के लिये प्रत्येक गाँव में आते हैं। नित्य मेला और उत्सव बना रहता है, लोग भक्तिवश गाते हैं कि

**तुझ पाद से स्पर्शाई ऐसी धुलिका को धन्य है**

**मोरबी**—तारीख २६-३-६३ से ३१-३-६३ तक। जनसंख्या ७५००० से अधिक; पूज्य स्वामीजी का अपूर्व स्वागत, मंगल प्रवचन हुआ। यहाँ छह दिन समयसार कर्ता-कर्म अधिकार पर प्रवचनों का बड़ी संख्या में धर्म जिज्ञासु लाभ लेते थे।

तारीख २७-३-६३ चैत्र सुदी २ को मोरबी दिगम्बर जैन मंदिर की वर्षगाँठ का महोत्सव मनाया गया। श्री जिनेन्द्र भगवान की भव्य रथयात्रा, पूजन, भक्ति, अभिषेक, ध्वजारोहण विधि आदि बहुत ही उत्साह सहित पूर्ण हुई। यहाँ भी साधर्मियों का मेला भरा था। सुशिक्षित समाज होने से सब व्यवस्था पूर्ण शांतिमय हुई। ऐसे पवित्र जैनधर्म का अपूर्व अवसर पानेवाले सभी मेहमानों को, और मोरबी दिगम्बर जैन संघ को धन्यवाद।

महावीर जयंती उत्सव बांकानेर (सौराष्ट्र) में हुआ। *—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन*

---

**श्री समयसारजी शास्त्र**—प्राप्त करने के इच्छुक सज्जनों को बधाई। २२०० पुस्तक शीघ्र छपवाने का निर्णय किया है। *— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)*

**प्रवचनसारजी शास्त्र**—में दो संस्कृत टीका छपवाना है, वह भी प्रेस में देने की तैयारी में है।

**आत्मप्रसिद्धि ग्रंथ**—समयसारजी शास्त्र में ४७ शक्तियों का निरूपण है, उस पर पूज्य सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के विस्तृत प्रवचनों का संग्रह है, यह पुस्तक गुजराती में छप चुकी है, हिन्दी में छपवाने का निर्णय किया है।

# आत्म कल्याण के अपूर्व अवसर से अवश्य लाभ उठाइये

## भोपाल में विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के लिये विशेष धार्मिक; जैन दर्शन शिक्षण वर्ग का आयोजन

यह सूचित करते हुए हमें अत्यंत हर्ष हो रहा है कि इस वर्ष ११ मई से ३० मई तक भोपाल मुमुक्षु मंडल की ओर से भोपाल में एक विशेष धार्मिक शिक्षण-वर्ग का आयोजन किया गया है। सौभाग्य से इस शिक्षण वर्ग को पूर्ण उपयोगी रूप से चलाने के लिए जैन-दर्शन के विशेष मर्मज्ञ आदरणीय श्री खेमचंदभाई, सोनगढ़ व श्रीयुत् बाबूभाई, फतेपुर निवासी, भोपाल पधार रहे हैं। उपर्युक्त महानुभाव न केवल जैन सिद्धांतों के गूढ़तम रहस्यों के विशेष मर्मज्ञ हैं, वरन आप में उन गूढ़ सिद्धांतों को अत्यंत सरल ढंग से समझाने की अद्वितीय क्षमता है।

अतएव समस्त अध्यापकों एवं विद्यार्थियों से निवेदन है कि इस महत्वपूर्ण शिक्षण वर्ग में भाग लेकर अपनी गर्मी की छुट्टियों का सदुपयोग करने की कृपा करें। साथ ही भोपाल में वेदी प्रतिष्ठा के अवसर पर दिनांक २३ मई से ३० मई तक आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजी स्वामी भी यहाँ पधार रहे हैं। इस शिक्षण वर्ग में भाग लेनेवाले भाईयों को पूज्य स्वामीजी के महत्वपूर्ण आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समस्त-आदरणीय अध्यापकों एवं विद्यार्थी भाईयों से निवेदन है कि इस शिक्षण वर्ग में अवश्य भाग लेने की कृपा करें।

नोट— (१) उक्त शिक्षण वर्ग में बाहर से आनेवाले भाईयों के लिए भोजन व ठहरने की नि:शुल्क व्यवस्था की गई है।

(२) शिक्षण वर्ग में पूरे समय तक भाग लेना आवश्यक होगा।

(३) शिक्षण वर्ग में भाग लेने के इच्छुक भाईयों से निवेदन है कि अपने आने की सूचना ५ मई तक हमें अवश्य भेज देवें।

(४) प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश में सोनगढ़ में चलनेवाला शिक्षण वर्ग इस वर्ष पूज्य स्वामीजी के विहार के कारण स्थगित किया जा चुका है।

**डालचंद जैन सर्राफ**
अध्यक्ष

**सूरजमल जैन, मंत्री**
श्री दिगम्बर जैन शिक्षणवर्ग-व्यवस्था समिति,
चौक, भोपाल (म०प्र०) अंतर्गत मुमुक्षु मंडल

पत्र व्यवहार का पता—सूरजमल जैन,
ठि०—श्री मोतीलाल मिट्ठूलाल जैन,
लोहा बाजार, भोपाल (म०प्र०)

अहो! सर्वोत्कृष्ट शांतरसमय सन्मार्ग!

अहो! उस सर्वोत्कृष्ट शांतरसप्रधान मार्ग के मूल सर्वज्ञदेव।

अहो! उस सर्वोत्कृष्ट शांतरस की सुप्रतीति करानेवाले ऐसे परमकृपालु सद्गुरुदेव!—आप इस विश्व में सर्व काल में जयवंत हों! जयवंत हों!! (—श्रीमद् राजचंद्र)

# अमूल्य तत्त्व विचार

[ श्री राजचंद्रजी ]

बहु पुण्य-पुंज-प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला,
तो भी अरे! भव-चक्र का फेरा न एक कभी टला।

सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है,
तू क्यों भयंकर-भाव-मरण-प्रवाह में चकचूर है॥

लक्ष्मी बढ़ी, अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये,
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि? कुछ नहिं मानिये।

संसार का बढ़ना अरे नर-देह की यह हार है,
नहिं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द लो जहाँ भी प्राप्त हो,
यह दिव्य अंतस्तत्त्व जिससे बंधनों से मुक्त हो।

'परवस्तु में मूर्छित न हो' इसकी रहे मुझको दया,
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुख भरा।

मैं कौन हूँ, आया कहाँ से और मेरा रूप क्या?
संबंध दुखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या?

इसका विचार विवेक पूर्वक शांत होकर कीजिये,
तो सर्व आत्मिक-ज्ञान के सिद्धांत का रस पीजिये॥

किसका वचन उस तत्त्व की उपलब्धि में शिवभूत है?
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति-प्रसूत है।

तारो अरे तारो निजात्मा शीघ्र अनुभव कीजिये,
'सर्वात्म समदर्शी' बनो यह वच हृदय लिख लीजिये॥

# ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव

**( दूसरी आवृत्ति )**

धर्म जिज्ञासुओं के लिये महान उपकारी साहित्य जो जैनधर्म का महत्वपूर्ण तात्त्विक और प्रयोजनभूत ग्रंथ है। जो जिज्ञासुओं के लिये सर्व समाधानरूप अपूर्व वस्तुस्वभाव के ज्ञानमय तत्त्वदृष्टि प्रगट करनेवाली महान चीज़ है। इसके मुख्य विषय—

१- क्रमबद्धपर्याय के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तथा उनमें दोष कल्पना का निराकरण है।

२- सम्यक् अनेकांत गर्भित सम्यक् नियतवाद-जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म—ये पंच समवाय और क्रमबद्ध के निर्णय में स्वसन्मुख होने का सच्चा पुरुषार्थ तथा अनेकांत।

३- अनेकांत, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार।

४- द्रव्य पर्याय संबंधी अनेकांत।

५- अनंत पुरुषार्थ।

६- वस्तुविज्ञान अंक जिसमें श्री प्रवचनसारजी गाथा ९९ के ऊपर पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रवचनों का सार है।

७- आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त हो, इस विषय में प्रवचनसार शास्त्र में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन है, उस पर खास प्रवचनों का सार-[ जिसमें नियतनय, अनियतनय, कालनय, अकालनय से वर्णन है ] बढ़िया जिल्द, सुंदर कागज व आकर्षक बढ़िया टाइप में उत्तम छपाई है, पत्र संख्या ४००, मूल्य २-५० नये पैसे। ५० पुस्तक लेने पर १० टका के हिसाब से कमीशन देंगे। इस पुस्तक की छपाई, कागज, बाइंडिंग आदि सर्वोत्तम होने पर भी लागत से डेढ़ रुपया कम मूल्य रखा गया है।

पता—**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

# अवश्य स्वाध्याय करें

| | |
|---|---|
| पंचास्तिकाय | ४ ॥) |
| नियमसार | ५ ॥) |
| समयसार, पृष्ठ ६१६ बड़ा साइज | ५) |
| मूल में भूल (नई आवृत्ति) | ।) |
| श्री मुक्तिमार्ग | ॥=) |
| श्री अनुभवप्रकाश | ॥) |
| श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह | ।।।) |
| समयसार प्रवचन भाग १ | ४ ॥) |
| समयसार प्रवचन भाग २ | ५ ।) |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ४ ॥) |
| समयसार प्रवचन भाग ४ | ४ ॥) |
| प्रवचनसार | ५) |
| अष्टपाहुड़ | ३) |
| मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र० | १ ।=) |
| द्वितीय भाग | २) |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र० | ॥–) |
| द्वितीय भाग | ॥–) |
| तृतीय भाग | ॥–) |
| जैन बालपोथी | ।) |
| छहढाला मूल मात्र | १५ नये पैसे |
| दसलक्षण व्रत विधानपूजा | ०–७५ |
| ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव | २ ॥) |
| मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द | ५) |
| सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति) | १.८५) |
| छहढाला (नई टीका) | ८७ नये पैसे |
| जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह सजिल्द | १ ।=) |
| अपूर्व अवसर प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानु. | ८५ नये पैसे |
| भेदविज्ञानसार | २) |
| अध्यात्मपाठसंग्रह | ५) |
| निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ? | =) |
| स्तोत्रत्रयी | ॥) |
| लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | =) |
| 'आत्मधर्म मासिक' लवाजम– | ३) |
| आत्मधर्म फाइल वर्ष १–३–५–६–७–८–१०–११–१२–१३ वर्ष | ३ ।।।) |
| शासन प्रभाव | =) |

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
**श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)


मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।